C.NO - 4127

Shanti Sharma Hiremath
'काव्यतीर्थ', 'वेदान्त शास्त्री'

पातञ्जलयोगसूत्रम्

भोजदेवकृत-राजमार्तण्डवृत्तिसमेतम्

धरेश्वरभोज-तद्ग्रन्थ-तन्मतसमीक्षा-
पातञ्जलसिद्धान्तादिविवरणात्मिकया
भूमिकया संवलितम्

सम्पादकः
कापिलमठाचार्यलब्धयोगविद्यः
श्री राम शंकर भट्टाचार्यः
(व्याकरणाचार्यः, एम. ए., पी-एच. डी.)

R635x1,1
15K3

भारतीय विद्या प्रकाशन
२२/३९ पञ्चगङ्गाघाट
वाराणसी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

R635x1,L 4127
15K3
Patanjali
Yoga sutra.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Shant Sing...

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
R635x1,1 (LIBRARY) 4127
15K3 JANGAMAWADIMATH, VARANASI

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक
भारतीय विद्या प्रकाशन
वाराणसी

R635x1,1
15K3

मूल्य—दो रुपये

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 4127

मुद्रक
व्रजवासी प्रिंटिंग प्रेस
अस्सी, वाराणसी–५

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भूमिका

योगेश्वराय योगाय योगाधिपतये युजे ।
योगिने योगरूपाय योगजाय नमो नमः ॥१॥
योगविद्या कृता न्यायमृष्टा येनर्षिणा पुरा ।
धर्ममेघयुजे तस्मै श्रीपतञ्जलये नमः ॥२॥

भोजवृत्ति—पतञ्जलिप्रणीत योगसूत्र पर धारेश्वर भोजदेव ने एक व्याख्या लिखी है, जो 'भोजवृत्ति' नाम से प्रसिद्ध है। वृत्तिरूप व्याख्या का जो लक्षण मिलता है (सूत्रार्थप्रधानो ग्रन्थो वृत्तिः), वह इस व्याख्या में चरितार्थ होता है, अतः 'वृत्ति' पद का व्यवहार सार्थक ही है। स्वयं भोजदेव भी 'वृत्ति' पद का ही व्यवहार करते हैं (स श्रीभोजपतिः''''वृत्तिं व्यधात्—सर्वान्तिम मङ्गलाचरण श्लोक; ग्रन्थारम्भ में भी 'पातञ्जले कुर्वता वृत्तिम्' वाक्य है)।

सुगृहीतनामधेय डा० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त कहते हैं कि भोजवृत्ति व्यासभाष्य की व्याख्या* है। यह वस्तुतः अनवेक्षण है। भोजवृत्ति योगसूत्र की एक स्वतन्त्र व्याख्या है (व्यासभाष्य की नहीं), यद्यपि इसमें सर्वत्र व्यासभाष्य की छाया उपलब्ध होती है। भोजराज ने व्यासभाष्य की कोई व्याख्या लिखी थी, इसका कोई प्रमाण ज्ञात नहीं है और दासगुप्त महोदय ने भी ऐसा कोई प्रमाण नहीं दिया है।

---

* A History of Indian Philosophy भाग १, पृष्ठ २१२ ; यहाँ दासगुप्त महोदय नागेशकृत छाया-व्याख्या को भी व्यासभाष्यटीका के रूप में स्वीकार करते हैं, यह भी अनवेक्षण ही है। छाया स्वतन्त्र टीका है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भोज का प्रामाण्य—यद्यपि यह वृत्ति लघ्वी है और वृत्तिकार स्वयं कहते हैं कि उन्होंने व्याख्या को विस्तृत नहीं किया बल्कि विकल्पजाल का परित्याग ही किया है, ('उत्सृज्य विस्तरमुदस्य विकल्पजालम्' इत्यादि ग्रन्थारम्भगत सप्तम मङ्गलाचरण-श्लोक द्रष्टव्य), तथापि उनकी व्याख्या का प्रामाण्य पूर्वाचार्यों ने माना है। गोदावर मिश्र योगचिन्तामणि के आरम्भ में कहते हैं—

यद् व्यासवाचस्पतिभोजदेवैः पातञ्जलीयं निरणायि तत्त्वम् ।
अन्यत्र सिद्धं यदपेक्षितं च तदत्र संक्षिप्य निरूपयामि ॥

(श्लोक ३)। श्री परशुराम कृष्ण गोडे महोदय ने इस ग्रन्थ पर विशद विचार किया है। †

शाक्त भास्कर राय ने ललितासहस्रनाम भाष्य में इस वृत्ति का उल्लेख किया है। ललिता की 'कैवल्यपददायिनी' नाम की व्याख्या में कैवल्य-स्वरूप के विषय में भास्कर कहते हैं—"कैवल्यशब्देन योगशास्त्रान्तिमसूत्रेण 'कैवल्यं स्वरूप-प्रतिष्ठा चितिशक्तेरित्यनेन प्रतिपादितस्वरूपो मोक्ष उच्यते। चितिशक्तेर्वृत्तिसारूप्यनिवृत्तौ स्वरूपमात्रेणावस्थानं कैवल्यमुच्यते इति भोजराजवृत्तौ" (पृ. १३२ ; मुद्रित योगसूत्रपाठ में ईषत् अशुद्धि है, जिसको ठीक कर यहाँ उद्धृत किया गया है)। यह पाठ मुद्रित भोजवृत्ति में (४।३३ सूत्र की व्याख्या में) यथावत् है (आनन्दाश्रममुद्रित संस्करणगत पाठान्तर द्र०)।

योग के अन्यान्य आचार्य भी भोजवृत्ति का स्मरण करते हैं। शिवानन्द सरस्वती ने योगचिन्तामणि में (पृ. २०) 'भोजराजव्याख्यानम्' और पृ. १५२, १७३ में 'भोजदेव' कहकर इस वृत्ति का उद्धरण दिया है। साधकोंके द्वारा उद्धृत इस वृत्ति के इन उद्धरणों से भोज की प्रतिष्ठा का अनुमान लगाया जा सकता है।

भोज की दृष्टि में योगसूत्रकार—अहिपति (शेष या अनन्तनाग) का दूसरा रूप पतञ्जलि इस योगसूत्र के रचयिता हैं, ऐसा भोज कहते हैं।

---

† द्र० Poona Orientalist, vol. IX, No. 1-2.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भोजराज यह भी कहना चाहते हैं कि एक पतञ्जलि ने ही योगसूत्र, व्याकरण-महाभाष्य और आयुर्वेदीय ग्रन्थ (चरक का प्रतिसंस्कार, चरकवार्तिक या इस प्रकार का कोई ग्रन्थ)—इन तीनों की रचना की है*। इस प्रकार के मत अन्यान्य अर्वाचीन व्याख्याकारों में भी दीख पड़ते हैं†।

इस विषय में "योगेन चित्तस्य पदेन वाचाम्....." इत्यादि एक श्लोक सर्वत्र प्रसिद्ध है।

इस छोटी सी भूमिका में हम इन मतों की अयुक्तता का विस्तृत प्रतिपादन नहीं कर सकते, अतः अपना मत संक्षेप से कह रहे हैं। पतञ्जलि शेषनाग के अवतार हैं और उन्होंने तीन विभिन्न कालों में योगसूत्र आदि तीन ग्रन्थों की रचना की है, यह एक संपूर्ण अप्राचीन दृष्टि है। एक काल में इन तीन ग्रन्थों की रचना हुई है, यह भी न्यायतः उपपन्न नहीं होता। प्राचीन शास्त्रों की तो बात ही क्या, अर्वाचीन पुराणों में भी इस मत की प्रतिध्वनि नहीं मिलती, यद्यपि इन पुराणों में योगी पतञ्जलि का सबहुमान उल्लेख मिलता है‡। आयुर्वेद, योग

---

* भोजवृत्ति के आरम्भिक मङ्गलाचरण श्लोक ४–५ तथा वृत्तिका अन्तिम मङ्गलाचरण श्लोक द्रष्टव्य हैं।

† रामभद्र दीक्षित पतञ्जलिचरित में कहते हैं—

"सूत्राणि योगशास्त्रे वैद्यकशास्त्रे च वार्तिकानि ततः।
कृत्वा पतञ्जलिमुनिः प्रचारयामास जगदिदं त्रातुम्"॥

चरकसंहिता टीकाकार चक्रपाणि कहते हैं—

"पातञ्जलमहाभाष्य चरक-प्रतिसंस्कृतैः।
मानोवाक्कायदोषाणां हन्त्रेऽहिपतये नमः"।

‡ भागवत ६।१५।१४ (यहाँ सिद्धेशसूची में पतञ्जलि का नाम है)। सौर पुराण में पातञ्जलयोगशास्त्र को शैव कहा गया है—"पातञ्जलं योगशास्त्रं शैवं तच्छास्त्रमिष्यते" (४०।५५)। यह शैव संप्रदाय की दृष्टि में कहा गया है। इस मत पर बहुत कुछ वक्तव्य है, जो अन्यत्र विवृत होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

या व्याकरण के किसी की प्राचीन ग्रन्थ में इस प्रवाद का संकेत भी नहीं मिलता। इन ग्रन्थों में शब्दप्रयोग की दृष्टि में भी ऐसा कोई उदाहरण नहीं दृष्ट होता, जिससे पूर्वोक्त एकता की संभावना भी व्यक्त हो† ।

अब प्रश्न होगा कि यदि पूर्वोक्त मत भ्रान्त ही है तो उस भ्रान्त धारणा के लिये भी तो कोई हेतु होना चाहिए। हमारा कहना है कि कुछ सादृश्य से ऐसी भ्रान्ति हो गई है। वह सादृश्य इस प्रकार का है—

प्रसिद्ध नाग नामों की सूची में 'पतञ्जलि' का नाम है (मत्स्यपुराण ६।३८-४१) और हम समझते हैं कि किसी पतञ्जलि का नागवाचक कोई उपनाम रहा होगा, जिसके कारण शेषनागावतार पतञ्जलि के द्वारा योगसूत्र प्रणीत हैं—इत्यादि प्रवाद वाद में उत्पन्न हुआ है। हम यह भी समझते हैं कि किसी न किसी कारण से योगसूत्र या योगसूत्रकार का कोई सम्बन्ध 'अनन्त' से था; क्योंकि विष्णुधर्मोत्तरपुराण में पातञ्जलशास्त्र की मूर्ति को 'अनन्त' के रूप में बनाने का स्पष्ट निर्देश मिलता है (तृतीय खण्ड ७३।४८)। अनन्त भी एक नागनाम है, जिसको शेषनाग मानाजाता है (विष्णुपुराण २।५।१३-१४, अग्निपुराण १२०।४) इस नाग के कहीं-कहीं योगी, योगिवदासीन आदि विशेषण—

---

† विचारकों को यह सोचना चाहिए कि पातञ्जल महाभाष्य में 'अनेक' शब्द को एकवचनान्त ही स्वीकार किया गया है (नञ्सूत्रभाष्य द्र०) एकवचनान्तरूप से अनेक शब्द का प्रयोग भी महाभाष्य में मिलता है योगसूत्र (४।५) में 'अनेकेषाम्' यह बहुवचनान्त प्रयोग है। चूर्णिकाकार (जो महाभाष्यकार हैं) के मत में 'अनेकस्मात्' रूप एक वचनान्त प्रयोग है 'साधु है, यह मेधातिथि ने स्पष्टतः कहा है (मनु ५।१५९)। असहायवाची अनेक' शब्द से इस योगसूत्र का कोई सम्बन्ध नहीं है, यह इस सूत्र के भाष्य से ही स्पष्ट हो जाता है। यहाँ अनेक शब्द 'बहु' का वाचक ही है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भी दिए गए हैं और हम समझते हैं कि इस प्रकार के कुछ सादृश्यों * से ही पूर्वोक्त प्रवाद बना होगा। Ancient Indian Historical Tradition ग्रन्थ में शब्दसाम्य या अर्थैक्य के कारण व्यक्तियों की भ्रममूलक एकता (पौराणिकों के द्वारा दर्शित) के अनेक उदाहरण दिए गए हैं (अध्याय ११)। अर्थशास्त्रकार कौटल्य (विष्णुगुप्त) के लिए कौटिल्य शब्द का प्रयोग एक भ्रान्ति पर ही आधृत है। †

भोजस्मृत विभिन्न मत—वृत्ति में भोज ने योगपृथक् मतों का कदाचित् ही उल्लेख किया है। यतः यह वृत्ति है, अतः परमत का निर्देश करना न्यायतः प्राप्त नहीं होता, तथापि एक दो स्थलों में उन्होंने परमत का उल्लेख किया है, यथा—

१—'केचिद्धि चेतनामात्मनो धर्ममिच्छन्ति' यह मतान्तर २।२० वृत्ति में दिखाया गया है। यह नैयायिकों का मत है।

२—'शब्द' की व्याख्या में भोज कहते हैं 'श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यः स्फोटरूपो वा शब्दः' (१।४२)। ३।१७. की वृत्ति में शब्द को 'स्फोटात्मा' कहा गया है। यह द्वितीय मत वैयाकरणों का है। सूत्रकार का तात्पर्य वाचक शब्द से है यह 'स्फोट' ही है, ऐसा कोई आग्रह नहीं है। वैयाकरणसंमत अर्थ में स्फोट शब्द का प्रयोग हरिवंश में है—"अक्षराणामकारस्त्वं स्फोटस्त्वं वर्णसंश्रयः"।

---

* 'नामसादृश्य से ऐतिहासिक तथ्यनिर्धारण में भ्रम का होना' इस देश में एक साधारण-सी बात है, क्योंकि स्थूल ऐतिहासिक दृष्टि का बहुमान इस देश में कभी नहीं था। परम्परा में जो भी बात चल पड़ती थी, उसके विषय में पुनः परीक्षण करना रूप कार्य पूर्वाचार्य प्रायः करते नहीं थे, अतः हमारा 'ऐतिहच-प्रमाण' कहीं-कहीं विपर्यस्त है। सहस्रों वर्ष के इतिहास में ऐसी भ्रान्तियों का होना सुलभ भी है। इन भ्रान्तियों के उद्भव में अन्ध श्रद्धा का भी बहुत कुछ हाथ रहा है विभिन्न संप्रदायों की गुरुपरम्परा की ऐतिहासिकता भी ऐसी ही विपर्यस्त है।

† द्र० कल्पना (फरवरी ६३ अंक) में प्रकाशित मेरा लेख 'कौटल्य के कौटिल्य रूपान्तर का कारण'।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—१।३४ वृत्ति में प्राणायाम की महत्ता के प्रसंग में भोज कहते हैं—"समस्तदोषक्षयकारित्वं चास्य आगमे श्रूयते"। यह मत स्मृति-पुराणादि में है—"प्राणायामैर्दहेद् दोषान्" (मनु० ६।७२)।

४—विन्ध्यवासी का एक मत (सत्त्वतप्यत्वमेव पुरुषतप्यत्वम्) इस वृत्ति में उद्धृत मिलता है (४।२२)। विन्ध्यवासी के विषय में विशद विचार अन्यत्र द्रष्टव्य है।*

५—४।२२ वृत्ति में अद्वैत वेदान्त का एक मत दिखाया गया है—"दर्शनान्तरेष्वपि एवंविध एवं अविद्यास्वभावः शास्त्रेऽधिक्रियते"। यह अविद्या किसकी है, इस पर एक सुन्दर विचार शंकरकृत गीताभाष्य (१३।२) में मिलता है। 'अविद्यावद्विषयाणि शास्त्राणि' ऐसा वाक्य अद्वैत वेदान्त के ग्रन्थों में स्पष्टतया मिलता है।

इस प्रकार के और भी कुछ मतान्तरों का उल्लेख भोजवृत्ति में मिलता है।

भोजप्रदत्त विशिष्ट उदाहरण—भोज ने वृत्ति में (स्वमत को प्रमाणित करने के लिये) कुछ पौराणिक घटनाओं का उल्लेख किया है। यथा—

१—विश्वामित्र की तपःप्रभाव से जाति-आयुःप्राप्ति (२।१२)। महाभारत आदिपर्व ७४।४८ में इनका ब्राह्मणत्वलाभ वर्णित हुआ है। शल्यपर्व (४०।१२-३०) में भी ब्राह्मणत्वप्राप्ति की कथा है।

२—नहुष का जात्यन्तर-परिणाम (२।१२)। यह उद्योग पर्व १७।१४-१८ में वर्णित है। वनपर्व १७८-१८१ अध्याय तक नहुष का अजगर रूप और उस देह से मुक्ति की कथा कही गई है।

३—उर्वशी का कार्त्तिकेयवन में लता-रूप (२।१२)। इस कथा का मूल अनुसन्धेय है।

भोजकृत सूत्राक्षर-व्याख्यान के कतिपय उत्कृष्ट स्थल—इस विषय के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—

---

* पातञ्जलयोग दर्शन की हमारी भूमिका पृ० ९२।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१—१।४१ सूत्रवृत्ति में भोज कहते हैं कि यद्यपि सूत्र में 'ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्य' रूप क्रम हैं, तथापि भूमिकाक्रम की दृष्टि में 'ग्राह्य-ग्रहण-ग्रहीतृ' ऐसा क्रम होना चाहिए। यह संगत दृष्टि है। समापत्ति के अभ्यास में भोजोक्त क्रम ही अपनाया जाता है।

२—१।३३ वृत्ति में कहा गया है कि यद्यपि सूत्र में 'सुख-दुःख-पुण्य-अपुण्य' शब्द व्यवहृत हुए हैं, तथापि उन शब्दों का तात्पर्य 'सुखी, दुःखी, पुण्यवान् और अपुण्यवान्' से ही है। यह दृष्टि उचित है तथा सूत्रकार का हृदय भी ऐसा ही है, क्योंकि सूत्र में 'विषय' शब्द है, जिससे 'सुखविषय' 'दुःखविषय' आदि शब्द लक्षित होते हैं। 'सुखविषय' से 'सुखी' रूप अर्थ लेना सर्वथा समीचीन है।

३—२।२० सूत्र में 'द्रष्टा दृशिमात्रः' कहा गया है। यहाँ मात्रग्रहण क्यों किया गया—इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है—"मात्रग्रहणं धर्मधर्मिनिरासार्थम्"। यह सर्वथा समीचीन दृष्टि है। क्योंकि सांख्यसूत्र में कहा गया है—'निर्गुणत्वान्न चिद्धर्मा' (१।१४६)। पुरुष वस्तुतः धर्मधर्मिदृष्टि का अतीत है, क्योंकि यह धर्मधर्मिभाव परिणामी वस्तु में ही संभव है और पुरुष अपरिणामी है—'सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात्' (४।१७)।

४—२।४७ सूत्रमें 'आनन्त्यसमापत्ति' को आसनसिद्धि के लिये सहायक माना गया है। (कोई कोई व्याख्याकार 'अनन्तसमापत्ति' पाठ करते हैं)। भोज ने 'आनन्त्यसमापत्ति' की जो व्याख्या की है, वह सर्वथा योगाभ्यासोपयोगी है। 'अनन्तसमापत्ति' का यही अर्थ हो सकता है। पर जो अनन्त का अर्थ 'शेषनाग' कर 'उनमें समापत्ति के अभ्यास से आसनजय' करने की बात करते हैं, उनका मत स्पष्टतया असमीचीन है। स्वबाह्य किसी पदार्थ में मन को स्थिर करने से सामान्यतया स्थैर्य हो सकता है, पर वस्तुतः उससे आसन की सिद्धि नहीं होती।

५—योगसूत्र में 'संवेग' शब्द है (१।२१)। कोई इसका अर्थ 'वैराग्य' करते हैं, तो कोई 'उपायानुष्ठान में शीघ्रता' करते हैं। ये दो अर्थ सर्वथा समीचीन नहीं हैं। भोज ने इस शब्द का जो अर्थ दिया है (क्रिया का हेतुभूत दृढतर संस्कार), वही संगत प्रतीत होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

६—कई विषयों की स्पष्ट व्याख्या भोज ने की है, यथा—प्रतिबिम्ब (४।२२), संहत्यकारिदृष्टान्त (४।२३), प्रसंख्यान (४।२८), संकोचविकाश धर्मिचित्त (४।१०), चित्तपरिणाम (१।१८) इत्यादि। अत्रत्य विचार बहुत ही विशद और रोचक हैं।

शब्दव्युत्पत्ति आदि—भोज ने प्रत्येक पारिभाषिक या विशिष्टार्थक शब्दों की व्युत्पत्ति करने का प्रयास किया है—विराम, संप्रज्ञात, आसन, कुम्भक, प्रत्याहार, क्लेश, विपाक, आशय, समाधि आदि शब्दों की व्युत्पत्तियाँ यथास्थान मिल जाती हैं। कभी कभी यह व्युत्पत्ति बहुत ही विचित्र ज्ञात होती है। वार्ता (३।३६ सूत्र) शब्द पर भोज कहते हैं—"वार्ता गन्धसंवित्। वृत्तिशब्देन तान्त्रिकया परिभाषया घ्राणेन्द्रियमुच्यते, वर्तते गन्धविषय इति कृत्वा वृत्ते र्घ्राणेन्द्रियाज् जाता वार्ता गन्धसंवित्"। भोज की यह व्याख्या कहाँ तक समीचीन है, इस पर विद्वान् विचार करें; गन्धसंवित् को वार्ता क्यों कहा जाता है, यह अभी अज्ञात ही है।

भोजव्याख्यान के चिन्त्य स्थल—१।३४ वृत्ति में 'प्रच्छर्दन-विधारण, की व्याख्या में भोज 'रेचक-पूरक-कुम्भकरूप प्राणायाम' का अभ्यास मानते हैं। (तदेवं रेचकपूरककुम्भकस्त्रिविधः प्राणायामः चित्तस्य स्थितिमेकाग्रतायां निवध्नाति)। यह चिन्त्य है, क्योंकि सूत्र में 'प्रच्छर्दनपूर्वक विधारण' (गत्यभाव) ही कहा गया है; यह पूर्ण प्राणायाम नहीं है। पूर्ण प्राणायाम का विवरण २।२९-५० सूत्र में है।

४।१३ वृत्ति में भोज कहते हैं कि सुख-दुःख-मोहरूप सत्त्व रजस्तमः के परिणाम से सभी भाव पदार्थ उत्पन्न हुए हैं, जैसे मृत्तिका के परिणाम से घट उत्पन्न होता है। भोज का यह मत अंशतः अशास्त्रीय है। वाह्य-आभ्यन्तर सभी भाव पदार्थ त्रिगुण के विकार हैं (सर्वमिदं गुणानां सन्निवेशविशेषमात्रम्—व्यासभाष्य ३।१३), पर ये तीन गुण सुख-दुःख-मोह-रूप नहीं हैं। सुखादि गुणवृत्तियां हैं, गुण का स्वरूप या स्वभाव नहीं हैं। तीनों गुणों का स्वभाव यथाक्रम प्रकाश-क्रिया-स्थिति ही हैं। सुख-दुःख-मोह को गुणलक्षण मानकर बौद्धों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ने भी सांख्यपक्ष पर दोषारोपण किया है * जो बौद्धाचार्यों की अज्ञता का उदाहरण हैं। सुखादि चैत्तिक व्यापार हैं, वे मूलभूत त्रिगुण के लक्षण नहीं हो सकते। सांख्यमत में जगत् सुख-दुःख-मोह से अन्वित (निर्मित) नहीं, प्रत्युत जगत् प्रकाश-क्रिया-स्थिति-रूप मूल गुणत्रय (मूल गुणत्रय में धर्मधर्मिदृष्टि अप्रयोज्य होती हैं।) का वैषम्यभूत है।

४।२४ की वृत्ति में 'आत्मभावभावना' की जो व्याख्या की गई है (चित्त ही कर्ता ज्ञाता भोक्ता है, इस अभिमान की निवृत्ति), वह चिन्त्य ही है, क्योंकि इस दर्शन में कर्तृत्व तो त्रिगुण का ही है—'त्रिषु गुणेषु कर्तृषु........' इत्यादि पञ्चशिखवचन में यह मत स्पष्टतया कहा गया है (२।१८ योगभाष्योद्धृत वचन द्रष्टव्य)।

३।४९ सूत्र वृत्तिमें भी 'गुणानां कर्तृत्वाभिमानशिथिलीभावरूपा विवेकख्यातिः' कहा गया है ; यह भी चिन्त्य है, क्योंकि सांख्याचार्यों के अनुसार तीन गुण ही मूलकर्ता हैं, चूँकि वे परिणामशील हैं (पाञ्चशिखादीनां सांख्यसूत्रम्, सूत्र २ की व्याख्या द्र०)। साथ ही यह भी सोचना चाहिए कि व्यासभाष्य में 'आत्मभावभावनानिवृत्ति' की इससे पृथक् व्याख्या ही दी गयी है। भोज यहाँ क्यों पृथक् व्याख्या कर रहे हैं, यह चिन्त्य है।

३।५ में जो 'प्रज्ञालोक' शब्द है, उसका अर्थ (वृत्ति में) 'विवेकख्याति' किया गया है, जो चिन्त्य है; क्योंकि सभी व्याख्याकार यहाँ प्रज्ञा का अर्थ 'समाधिप्रज्ञा' करते हैं, जिसका उपयोग विभिन्न भूमियों में करने का उपदेश ३।६ सूत्र में दिया गया है। विवेकख्याति का भूमिओं में ऐसा प्रयोग हो नहीं सकता (विवेकख्यातिप्रकृति-पुरुष के भेद की ख्याति)।

१।१७ सूत्रोक्त सास्मितसमाधि के व्याख्यान में भोज ने अस्मिता के स्वरूप के विषय में कहा है कि जिस अवस्था में अन्तर्मुखत्व-परिणाम के कारण चित्त

---

* बोधिचर्यावतार ९।१२५-१२८; सुखादि वेदना हैं "तत्र विज्ञानसंयुक्ता त्रिविधा चेतना ध्रुवा। सुखदुःखेति यामाहुरदुःखामसुखेति च" (शान्तिपर्व)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के प्रकृतिलीन होने से सत्तामात्र अवभासित होता हैं, वही अस्मिता है। यह वाक्य गभीर है, पर लक्ष्य से भ्रष्ट है, क्योंकि प्रकृतिलीन चित्त का विषय नहीं रह सकता, व्यक्त चित्त का ही विषय रह सकता है। सास्मित समाधि चूँकि सालम्बन है, इसलिये अव्यक्तताप्राप्त चित्त का वह धर्म नहीं हो सकता (कापिलाश्रमीय पातञ्जलयोगदर्शन १।१७)।

भोजवृत्ति की कुछ विशिष्ट बातें—१।२८ वृत्ति में भोज 'प्रणव' को 'सार्धत्रिमात्र' (पाठान्तर—त्रिमात्रिक) कहते हैं। यह दृष्टि स्मृति आदि अन्यान्य शास्त्रों में मिलती है—"अकारश्च तथेकारो मकारश्चार्धमात्रया........" इत्यादि अग्निपुराणीय श्लोक इस प्रसङ्ग में द्रष्टव्य है (३७२।२२-२५)।

सांख्य को भोज 'शान्तब्रह्मवादी' कहते हैं—"शान्तब्रह्मवादिभिः सांख्यैः" (४।२२;४।३३)। यह दृष्टि न्याय्य है, क्योंकि शान्तोपाधि चिद्रूप पुरुष ही सांख्य का अन्तिम लक्ष्य हैं। कठ उप० में 'शान्त आत्मा' शब्द का प्रयोग भी इस रूप में ही है—'तद् यच्छेच्छान्त आत्मनि' (१।३।१३)। यह शान्त आत्मा ही चिद्रूप पुरुष है, वही 'परा गति' है—'सा काष्ठा सा परा गतिः' (कठ० १।३।११)। यह चिद्रूप आत्मा सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् नहीं, क्योंकि सार्वज्ञ्यादि चित्त के धर्म हैं और शान्त आत्मा अन्तःकरण-संपर्कशून्य हैं, अतः निर्गुण आत्मा को सर्वज्ञ-सर्वशक्ति कहना अतत्त्वदर्शन है। हमारी दृष्टि में ऐसा समझने वालों को 'संकीर्ण ब्रह्मवादी' कहा जा सकता है। 'ब्रह्म' शब्द का व्यवहार भी सांख्य-संप्रदाय में था (द्र० ४।२२ योगभाष्यधृत श्रुतिवाक्य; शान्तिपर्व—२१८।१४ गत आसुरिमत)। सांख्यीय षष्टितन्त्र के विषयों के विवरण में ब्रह्मपद व्यवहृत हुआ है (अहिर्बुध्न्य संहिता १२।२०)। माठरवृत्ति में 'ब्रह्म उपदिदेश' वाक्य है (प्रथम कारिका-वृत्ति)। ब्रह्म शब्द से प्रकृति भी कही जाती है, यह ज्ञातव्य है। सोपाधिक और निरुपाधिक पुरुष—ये दो भी ब्रह्मपदवाच्य होते हैं। अतः विवक्षा को देखकर ब्रह्मपद का अर्थ निश्चित करना चाहिए।

२।५० वृत्ति में भोज 'उद्घात' का लक्षण देते हैं—"उद्घातो नाम नाभिमूलात् प्रेरितस्य वायोः शिरस्यभिहननम्"। उद्घात का इतना स्पष्ट विवरण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विज्ञानभिक्षु आदि के व्याख्यानों में नहीं मिलता। यहाँ यह स्मरण रखने की बात है कि प्राचीन योगाचार्य देवल ने 'उद्घात' का यही लक्षण दिया था—"प्राणापानव्यानोदानसमानानां सकृदुद्गमनं मूर्धानमाहत्य निवृत्तिश्चोद्घात:" (कृत्यकल्पतरु का मोक्षकाण्ड पृ० १७० में उद्धृत)। संभवत: धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों को लिखने के समय भोजराज ने इस लक्षण को देखा था।

४।१६ की वृत्ति में भोज कहते हैं—"ततश्च येनैवार्थेनास्य ज्ञानस्य स्वरूपोपराग: कृतस्तमेवार्थं ज्ञानं व्यवहारयोग्यतां नयति। ततश्च सोऽर्थो ज्ञात इत्युच्यते। येन चाकारो न समर्पित:, स न ज्ञातत्वेन व्यवह्रियते"। यहाँ 'येन चाकारो न·····' वाक्य एक विशिष्ट युक्तिप्रणाली की ओर इंगित करता है, जो २।१।३३ न्यायवार्त्तिक तात्पर्य टीका में वाचस्पति ने कही है—"यदाहु: सोऽयममूल्यदानक्रयी स्वकारं च ज्ञाने समर्पयति, प्रत्यक्षतां च स्वीकर्तुमिच्छति"। यहाँ पाठ निश्चित ही भ्रष्ट है, और यहाँ 'स्वाकारं न ज्ञाने समर्पयति' यही पाठ होगा*। हम समझते हैं कि भोज तात्पर्यटीका से परिचित थे, जैसा इस सन्दर्भ से ज्ञात होता है।

४।२२ सूत्र वृत्ति में प्रतिविम्ब और भोग पर भोज का व्याख्यान बहुत ही विशद है। ४।२३ वृत्ति में संहत्यकारित्व का विचार सूक्ष्मरूप से किया गया है।

भोज परमर्षि कपिल को जन्मसिद्धि के उदाहरण के रूप में मानते हैं (४।१)। सांख्यकारिकोक्त भावों के वर्णन में गौडपाद कहते हैं—"भगवत: कपिलस्यापि आदिसर्गे उत्पद्यमानस्य चत्वारो भावा: सहोत्पन्ना:" (४३ कारिका)। युक्तिदीपिका में कहा गया है—"परर्षिप भगवान् सांसिद्धिकधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यैराविष्टपिण्डो विश्वाग्रज: कपिलमुनि:" (पृ० १७४)। वस्तुत: मानुष गुरु के उपदेश के विना सहजात धर्मादि के बल से ही परमर्षि योगसिद्ध हुए थे—यह इतिहास पुराण में प्रसिद्ध है, क्योंकि उनके किसी मानुष गुरु का उल्लेख कहीं भी नहीं

---

* न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका-ग्रन्थ बहुत ही भ्रष्ट रूप से मुद्रित हुआ है। हम इसका यथासंभव संशोधन कर रहे हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मिलता। साक्षात् हिरण्यगर्भ से उनको ज्ञानप्राप्ति का उल्लेख योगसंप्रदाय के आगम में है।

३।२५ वृत्ति में 'विप्रकृष्टज्ञान' के उदाहरण में भोज 'मेरु के अपरपार्श्ववर्ती रसायन * आदि' का उल्लेख करते हैं। एक साधारण स्थल में इस प्रकार के एक असाधारण उदाहरण देने से यह ध्वनित होता है कि भोज को इस 'रसायन' के विषय में कोई सूचना ज्ञात थी। असुरों में रसायनसिद्धि थी, योगभाष्य (४।१) में स्पष्टतः ऐसा कहा गया है। क्या भोज असुरों को मेरु के अपर पार्श्व में रहने वाले मनुष्यों की तरह ही समझकर ऐसा कह रहे हैं ?

१।२ वृत्ति में क्षिप्त-मूढ़-विक्षिप्त भूमि के प्रसंग में भोज कहते हैं कि क्षिप्त भूमि नित्य ही दैत्यदानवादि की है, मूढभूमि रक्षःपिशाचादि की है एवं विक्षिप्त भूमि नित्य ही देवों की है। इसमें सन्देह नहीं कि दैत्य दानवादि के चित्त क्षिप्त आदि होते हैं, क्योंकि उनके ऐसे चित्तों का विवरण इतिहास-पुराण में प्रायेण मिलता है। पर भोज ने जो 'सदैव' पद का व्यवहार किया है, वह कहाँ तक संगत है, यह विचार्य है। शास्त्रों में उच्च साधनयुक्त देवों का भी उल्लेख है (३।२६ योगभाष्य द्र०)।

भोजकृतपरमतखण्डन—परमतखण्डन के प्रति भोज का कोई आग्रह नहीं दीखता। वृत्तिकार के लिये यह कोई आवश्यक कार्य भी नहीं है†। कुछ विशिष्ट स्थलों में भोज की परमतखण्डनात्मक प्रवृत्ति दीख पड़ती है, यह भी चतुर्थपाद की व्याख्या में ही विशेषतः दृष्ट होती है। भोज इस पाद को लक्ष्य कर कहते हैं- "विप्रतिपत्तिसमुत्थभ्रान्तिनिराकरणेन युक्त्या कैवल्यपादोऽयमारभ्यते" (३।१ वृत्ति)

---

* इसका पाठान्तर 'रसातल' है, पर पातालरूप रसातल मेरुपर्वत के अपर पार्श्ववर्ती नहीं है, वह पृथिव्यधःस्थ ही है (लिङ्ग १।४५ अ०; विष्णु २।५ अ० आदि द्रष्टव्य)।

†—वृत्तिकार का कर्तव्य क्या है, इसके विवरण के लिये मेरा लेख 'Kinds of expositions in Sanskrit Literature' द्रष्टव्य है [A.B.O.R.I. भाग ३६, संख्या (१–२)]।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

४।३३ वृत्ति में भोज ने अत्यन्त स्पष्ट से आत्मविषयक अन्यवादियों के मतों का अनुवादपूर्वक खण्डन किया हैं, यथा—वेदान्तवादियों के आत्मा का चिदानन्दमयत्व का खण्डन। चिद्रूप आत्मा में आनन्द (बौद्धप्रत्ययविशेष) स्वतः हैं, ऐसा प्रमाणित नहीं होता, महत्तत्त्वोपाधि पुरुष को आनन्दमय या आनन्द (गौणरूप से) कहा जा सकता है। चिद्रूप पुरुष दुःखातीत हैं, अतः उनको यदि आनन्दस्वरूप कहा जाय तो कोई आपत्ति नहीं है। चेतना के योग से आत्मा चेतन है—यह न्यायमत भी यहाँ खण्डित किया गया है। उसी प्रकार मीमांसक आदि के मतों का भी खण्डन यहाँ किया गया है। काश्मीर शैवदर्शन की 'विमर्श' परक दृष्टि का खण्डन सांख्य-योगग्रन्थों में केवल यहीं मिलता है। आन्वीक्षिकी की दृष्टि से शैवमत में कई असंगतियाँ हैं, जिनका उत्तर स्वाभिमत आगम के आश्रय से ही शैवागमी देते हैं। 'शिव एव गृहीतपशुभावः' 'स्वात्मप्रच्छादन क्रीडापण्डितः परमेश्वरः' 'परिणत होते हुए भी अपरिणामी रहना' आदि दृष्टियाँ न्याय की दृष्टि में असमाधेय ही हैं।

इस प्रसंग में हम यह कहना उचित समझते हैं कि योगसूत्र में जो मतखण्डन प्रवृत्ति देखी जाती है (द्र० सूत्र ३।२०, ४।१६, ४।१९), वह पूर्वसूत्र से स्वभावतः उत्पन्न शङ्का के निरास के लिये है, न कि किसी संप्रदाय-विशेष के द्वारा उद्भावित आपत्ति को लक्ष्यकर। हाँ, यह पूर्णतः संभव है कि खण्डित मत किसी संप्रदाय का हो (अर्थात् अर्वाचीन काल में वह मत किसी संप्रदाय के द्वारा अनुमोदित हो), परन्तु सूत्रकार का लक्ष्य कोई निश्चित संप्रदाय है—ऐसा प्रतीत नहीं होता।

योगसूत्र का रचनाकाल—इस भूमिका में पतञ्जलि के काल के विषय में कुछ विचार करना अप्रासङ्गिक होगा (द्रष्टव्य मत्सम्पादित पातञ्जल योगदर्शन की भूमिका पृ० ३१–३५)। हम इतना ही कह सकते हैं कि जब हैरण्यगर्भ योग लुप्त हो रहा था, उस समय पतञ्जलि ने योगसूत्र को रचा। निश्चय ही पतञ्जलि आर्षकालिक आचार्य हैं। पाणिनि के उपकादिगण में पतञ्जलि शब्द का पाठ भोज-सम्मत है (गणरत्नमहोदधि पृ० ५९)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रसङ्ग में यह ज्ञातव्य है कि पतञ्जलिप्रदत्त ईश्वरलक्षण उसी रूप में योगियाज्ञवल्क्य में है, जहाँ इसको 'श्रुतिवाक्य' कहा गया है (२।४३-४४)। हमारा अनुमान है कि सामशाखा-विशेष में ऐसा वचन था। योगसूत्र में व्युत्क्रमशब्द-प्रयोग मिलता है (१।४६), जो सिद्ध करता है कि यह ग्रन्थ शब्दतः किसी ग्रन्थ पर आधृत है। यह आधारभूत ग्रन्थ हैरण्यगर्भ-योगशास्त्र है, ऐसा सामान्यतया कहा जा सकता है।

ईश्वर के विषय में भोज की भ्रान्त दृष्टि— १।२४ वृत्ति में भोज कहते हैं—'प्रकृतिपुरुषसंयोगवियोगयोरीश्वरेच्छाव्यतिरेकेण अनुपपत्तेः" । यह एक अलीक आपत्ति है, सांख्यज्ञान में अपरिपक्वमति ही ऐसी भ्रान्त धारणा रखते हैं। योगशास्त्र-संमत दृष्टि यह है कि जहाँ भी द्रष्टृ-दृश्य-संयोग है, वह अनादि है ('अनादिरर्थकृतः संयोगः' यह पञ्चशिख-वाक्य द्र०), किसी पुरुष-विशेष के द्वारा कृत नहीं है। व्यावहारिक आत्मभाव का चरम विश्लेषण कर योगी समझते हैं कि प्रत्येक जीव 'प्रकृति-पुरुष का समाहार' है, यह नहीं कि कभी द्रष्टा और दृश्य पृथक् थे और किसी काल में किसी हेतु से प्रकृति-पुरुष के संयोग होने के कारण महदात्मभाव (जीव) की उत्पत्ति हुई। यह समाहार ईश्वरकृत नहीं हो सकता, क्योंकि ईश्वर भी 'पुरुष-प्रकृति-संयोग का ही एक फल हैं। ईश्वरेच्छा यदि अन्य पुरुषों को बद्ध करेगी, तो ईश्वर को भी ईश्वर (ईश्वरता अन्तःकरण का धर्म है ; अन्तःकरण त्रैगुणिक है, जो पुरुष-संयोग-युक्त प्रकृति का एक परिच्छिन्न परिणाम है) करने के लिए किसी अन्य ईश्वर की इच्छा चाहिए, और इस प्रकार अनवस्था होगी। दूसरी बात यह है कि केवल द्रष्टा जब प्रकृति-संयोग-हीन रहता है, तब उस द्रष्टा पर किसी की इच्छा (इच्छा प्राकृत अन्तःकरण का विकार है) कोई कार्य नहीं कर सकती, क्योंकि तब स्वरूप द्रष्टा देशकालातीत रहता है और कालातीत द्रष्टा को कालव्यापिनी इच्छा किसी के साथ संयुक्त नहीं करा सकती। प्रजापति का सर्वभावाधिष्ठातृत्व-संस्कार-युक्त अन्तःकरण जब प्राकृतिक नियम से व्यक्त होता है, तब एक ब्रह्माण्ड व्यक्त होता है, जिस ब्रह्माण्ड को व्यवहार्य रूप में पाकर असिद्ध जीव अपने संस्कारानुसार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषार्थाचरण करता रहता है। यह सांख्ययोगदृष्टि है, और जीव के व्यक्तदेह-धारणरूप कर्म में प्रजापति (पूर्वसिद्ध हिरण्यगर्भ नामक ईश्वर) के ब्रह्माण्डाभिव्यक्ति के मूल में योग होने से अज्ञ दार्शनिक 'ईश्वर की इच्छा से प्रकृति-पुरुष-संयोग' की वात करते हैं, जो किसी भी अनुभव, परीक्षण या युक्ति से सिद्ध नहीं होता। 'संस्कारादि के अनुसार जीव का कर्म' तथा 'कर्मानुसार फल की प्राप्ति' इन दोनों पर भी साक्षात् रूप से प्रजापति ईश्वर का कोई हाथ नहीं है, यह भी सांख्य-योग का मत है—"नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः"।

मुक्त ईश्वर (योगदर्शनोक्त) या प्रजापति सगुण ब्रह्म के भक्तिपूर्वक प्रणिधान करने से चित्त में विवेकज्ञान की वृद्धि होती है, इस दृष्टि से ईश्वर का प्रसंग योगशास्त्र में किया जाता है। ईश्वर को सांख्य योगशास्त्र में कई तत्त्व नहीं माना जाता*, यद्यपि उनके अस्तित्व और प्रकृत स्वरूप का न्यायसंगत विश्लेषण योगी करते ही हैं। ईश्वरस्वरूप का न्यायमार्जित विश्लेषण न कर भी अन्यान्य सम्प्रदाय उनके प्रति भक्ति करते हैं, जो प्राथमिक साधन की दृष्टि में दोषावह नहीं है।

१।२५ वृत्ति में ईश्वर की 'कारुणिकता' के विषय पर भोज ने जो कहा है, वह भी उनकी अज्ञता का ज्ञापक है। वे कहते हैं कि यद्यपि ईश्वर का कोई प्रयोजन नहीं है, तथापि करुणा से ही वे प्रकृति-पुरुष का संयोग-वियोग-कार्य में रत होते हैं। पहले ही यह जानना चाहिए कि यह मत न सूत्र में है और न भाष्य में। पुरुष-प्रकृति के संयोग-वियोग में ईश्वर का कोई हाथ नहीं हो

* सांख्य में 'तत्त्व' एक पारिभाषिक शब्द है। चरम हेतु (पुरुष, द्रष्टा) और चरम उपादान (प्रकृति) दो तत्त्व हैं। पुरुषसंयोगहेतुक प्रकृतिजन्य महद् आदि भी उपादान-दृष्टि में तत्त्व हैं। जगत्-सर्जक ईश्वर न विशुद्ध द्रष्टा हैं और न वे विशुद्ध दृश्य हैं, अतः वे कोई 'तत्त्व' नहीं हैं। जैसे ब्रह्माण्ड, जीव, भिन्न-भिन्न देव कोई तत्त्व नहीं होते। अन्य अर्थ में तत्त्व शब्द का प्रयोग कर ईश्वर को भी एक तत्त्व माना जा सकता है, पर वह गौण दृष्टि होगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सकता, यह पहले दिखाया गया है। ईश्वर के कारुण्य की जो बात कही गयी है, वह भी भ्रान्त है, क्योंकि इस दुःखमय संसार की करुणा से इच्छापूर्वक सृष्टि करने की प्रवृत्ति किसी सर्वज्ञ पुरुष की नहीं हो सकती। सृष्टिकर्त्ता प्रजापति मुक्त पुरुष नहीं हैं; बल्कि अविद्यायुक्त पुरुष हैं और यही कारण है कि शास्त्रों में उनका 'परार्ध कालके अन्त में विवेकज्ञानपूर्वक मुक्तिलाभ' की बात कही गई है। उनका संस्कार (सर्वभावाधिष्ठातृत्वादिगुणयुक्त) प्राकृतिक नियम के अनुसार ही व्यक्त होता है, क्योंकि वे साविद्य-सोपाधिक-पुरुष-विशेष हैं। प्राणियों पर कृपा कर वे इस ब्रह्माण्ड को व्यक्त नहीं करते, बल्कि गुणत्रय के स्वभाव से ही उनका अन्तःकरण व्यक्त होता है, जिससे ब्रह्माण्ड की स्थूल व्यक्तता होती है। उनके ऐश्वर्य द्वारा व्यक्त इस ब्रह्माण्ड को पाकर जीव पुरुषार्थ की सिद्धि करते हैं (अन्यथा जीव मोहवत् स्थिति में रुद्धकरण अवस्था में ही रहते हैं), और विवेकाभ्यास से कैवल्य प्राप्त करने का सुयोग पाते हैं—इस दृष्टि से प्रजापति 'कारुणिक' हैं, पर यह कहना भ्रान्त है कि प्रजापति इस इच्छा से ही सृष्टि करते हैं कि जीव मुक्त हो जाएँ। यदि प्रजापति की ऐसी इच्छा होती तो सर्वभावाधिष्ठातृत्व-संस्कारवती उस इच्छा से सब जीव प्रभावित होते और अवश होकर मोक्षसाधन ही करते रहते, पर अभिव्यक्त प्राणियों की पुरुषार्थाचरण-क्रिया को देखने से ज्ञात होता है कि प्रजापति की कोई ऐसी इच्छा जीवों पर नहीं है। वस्तुतः जीव के किसी भी कर्म में प्रजापति ईश्वर का कोई भी साक्षात् अभिध्यान नहीं है, यद्यपि ब्रह्माण्ड की अभिव्यक्ति का चरममूल वे ही हैं। भूतादिनामक अहंकार से तन्मात्र की उत्पत्ति होती है, यह सांख्यमत इस प्रसंग में आलोच्य है।

प्रश्न हो सकता है कि जगत् के सृष्टिकर्ता के रूप में प्रजापति को मानने की क्या कोई युक्ति है? उत्तर में वक्तव्य है कि बाह्य शब्दादि के मूल में कालव्यापिनी क्रिया को मानने के लिये हम न्यायतः बाध्य होते हैं। कालव्यापिनी क्रिया अन्तःकरण की ही हो सकती है, अतः जगत् के साक्षात् मूल में पुरुषविशेष का अन्तःकरण है, यह अनुमान से सिद्ध होता है। यह अन्तःकरण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिनका है, वही प्रजापति हिरण्यगर्भ हैं, जिनके नारायण आदि अन्य नाम सांख्य-योगशास्त्र में है। इस पर विशेष विचार के लिये 'सांख्यदर्शन में ईश्वर की सत्ता' शीर्षक मेरा लेख द्रष्टव्य है (वेदवाणी १५।५-९)।*

योगसूत्रोक्त ईश्वर प्रजापति या ब्रह्माण्डसर्जक नहीं हैं, बल्कि वे जगद्-व्यापारवर्ज हैं, यह इस प्रसंग में ज्ञातव्य है। ३।४५ व्यासभाष्य में सृष्टि-कर्त्ता 'पूर्वसिद्ध' प्रजापति का निर्देश है। कोई भी जीव सास्मित समाधि के बल पर सर्वभावाधिष्ठातृत्व आदि संस्कारों से युक्त हो कर जगत् का सर्जक बन ही सकता है। यह अविद्यायुक्त पुरुष का कार्य है, मुक्त पुरुष का नहीं, यह योगविद्या का मत है। ईश्वरता अन्तःकरणधर्म है, अतः योगाभ्यास से जगत्-सर्जन का सामर्थ्य उत्पन्न होता है।

योगसूत्रसंख्या—भोजवृत्ति में जितने सूत्र स्वीकृत हुए हैं, वे सभी व्याख्याकारों के द्वारा अनुमोदित हैं। निम्नोक्त स्थलों में कुछ मतभेद हैं, यथा—

१—'न चैकचित्ततन्त्रम्' इत्यादि सूत्र (जो वाचस्पति आदि द्वारा स्वीकृत है, ४।१६) भोज के अनुसार सूत्र नहीं है। वे इस वाक्य को भाष्य का अंग समझते हैं। योगसूत्र के प्राचीनतम हस्तलेखों के मिलने पर इस विषय में कुछ निर्णय किया जा सकता है।

२—३।२० सूत्र (न च तत्....) भोजसंमत है, पर भिक्षु के मत में यह भाष्य का ही अंग है, पृथक् सूत्र नहीं। वाचस्पति आदि इसे सूत्र समझते हैं, यह ज्ञातव्य है। नागेश भट्ट और भावागणेश ने इस सूत्र की व्याख्या नहीं की है, अतः इस सूत्र के सूत्रत्व पर विचार प्राचीन हस्तलेखों के आधार पर करना होगा।

---

* "सांख्ये च पठ्यते शास्त्रे नामभिर्बहुधात्मकः। विचित्ररूपो विश्वात्मा एकाक्षर इति स्मृतः" (शान्तिपर्व ३०२।१९)। सृष्टिकर्ता हिरण्यगर्भ को लक्ष्य कर 'महान्' पद योगशास्त्र में प्रयुक्त होता था—"महानिति योगेषु पठ्यते" (देवी पु० ३७।४७) महत्तत्त्वाधिष्ठित पुरुष ही सृष्टिकर्ता होते हैं, इस दृष्टि से ही ऐसा कहा जाता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—किसी-किसी संस्करण में ३।२१ सूत्र के बाद 'एतेन शब्दाद्यन्तर्धानमुक्तम्' रूप एक सूत्र भोजसंमत माना गया है, पर यह संपादकीय प्रमाद है। भोज की व्याख्या (३।२१ सूत्रगत) से यह कथमपि प्रतीत नहीं होता कि वे 'एतेन शब्दाद्यन्तर्धानम्' रूप एक पृथक् सूत्र की व्याख्या कर रहे हैं, क्योंकि यदि वे इस वचन को कोई सूत्र समझते तो पातनिका के रूप में कुछ लिखते। संभवत: 'एतेन भूतेन्द्रियेषु' (३।१३) सूत्र के संस्कार से 'एतेन'-पद-घटित इस वचन को सूत्र के रूप में वृत्तिसम्पादकों ने मान लिया है।

सूत्रपदच्छेद में मतभेद—सूत्रपाठ के समान रहने पर भी सूत्रपदच्छेद में एक स्थान पर मतभेद लक्षित होता है, यथा—

१।२९ सूत्र में 'प्रत्यक्चेतनाधिगमः' में भोज 'चेतना-अधिगम' ऐसा समझते हैं, जब कि वाचस्पति आदि व्याख्याकार 'चेतन-अधिगम' ऐसा कहते हैं। चेतना = दृक्शक्ति : (पुरुष:), यह भी भोज का मत है। चेतना शब्द कभी-कभी ज्ञानवृत्ति का भी वाचक होता है, अत: चेतना शब्द के अर्थ-निर्धारण में विवक्षा पर पूर्ण दृष्टि रखनी चाहिए। 'चित्तचेष्टा' अर्थ में भी चेतना का प्रयोग है।

१।३४ सूत्रगत 'प्रच्छर्दनविधारणाभ्याम्' की व्याख्या में 'विधारणा' शब्द भोजवृत्ति के कई संस्करणों में मुद्रित हुआ है। यद्यपि 'विधारणा' शब्द साधु है, पर इस सूत्र में 'विधारण' शब्द ही है, यह व्यासभाष्य से ही ज्ञात होता है। अन्यान्य व्याख्याएँ भी भाष्यानुसारी हैं (प्रस्तुत संस्करण में अनवधान से 'विधारणा' पाठ मुद्रित हो गया है, कृपया इसका संशोधन कर लें)।

सूत्रपाठभेद :—भोजव्याख्यात सूत्रों के पाठ कहीं-कहीं अन्य व्याख्यानों से भिन्न दृष्ट होते हैं। अधिकांश पाठभेद अर्थभेदकारक नहीं हैं। कुछ पाठभेद तो लिपिकर-प्रमाद से भी उत्पन्न हो सकते हैं तथा कुछ पाठभेद भोज-व्यवहृत शब्दों को देख कर भोजवृत्ति के विभिन्न सम्पादकों द्वारा कल्पित हुए हैं, जहाँ वस्तुत: कोई पाठ-भेद नहीं हैं। हम यहाँ प्रत्येक पाठभेद पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समीक्षा कर रहे हैं। जहाँ अर्थान्तर नहीं है, वहाँ अधिक विचार करना प्रायेण अनावश्यक ही है।

(१) १।५ सूत्र में अनेक संस्करणों में 'क्लिष्टाक्लिष्टाः' पाठ है (जो मूल पाठ प्रतीत होता है), पर भोज-व्याख्यान को देखकर (वृत्तयः कीदृश्यः ? क्लिष्टा अक्लिष्टाः) सूत्र में भी 'क्लिष्टा अक्लिष्टाः'—ऐसे असमस्त पाठ की कल्पना की गई है। हमारी दृष्टि में सूत्रस्थ 'क्लिष्टाक्लिष्टाः' पाठ को ही भोज ने विभक्त कर लिखा है ; पाठभेद होने पर भी अर्थभेद किञ्चिन्मात्र नहीं होता।

(२) १।८ सूत्र में 'प्रतिष्ठम्' के स्थान पर 'प्रतिष्ठितम्' पाठ कुछ संस्करणों में मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वृत्ति में भोजव्यवहृत 'प्रतिष्ठित' शब्द को देखकर ही सूत्र में भी 'प्रतिष्ठित' पाठ की कल्पना की गई है। प्राचीनतर व्याख्यान के अनुसार 'प्रतिष्ठम्' पाठ ही सिद्ध होता है।

(३) १।१४ सूत्र में 'आदर' शब्द भी किसी-किसी संस्करण में मिलता है। निश्चित ही सूत्रस्थ 'सत्कार' शब्द को लक्ष्यकर 'आदर' शब्द का प्रयोग भोज ने किया था, पर बाद में वह एक पाठभेद के रूप में माना गया। वाचस्पति और विज्ञानभिक्षु आदि के व्याख्यान से ज्ञात होता है कि सूत्र में 'आदर' शब्द नहीं है।

(४) १।१८ सूत्र में किसी-किसी संस्करण में 'संस्कारशेष' के स्थान पर 'संस्कारविशेष' मुद्रित हुआ है। यह सर्वथा भ्रष्ट पाठ ही है, क्योंकि असप्रंज्ञात समाधि का जो विवरण भिन्न-भिन्न स्थलों में मिलता है, उससे वह 'संस्कार शेष' है, यही सिद्ध होता है। निर्वीज समाधि 'संस्कारविशेष' है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

(५) १।२५ सूत्र की वृत्ति के कुछ सस्करणों में 'सर्वज्ञवीज' के स्थान पर 'सार्वज्ञ्यवीज' पाठ मिलता है, कुछ अन्य व्याख्याकार भी इस पाठ को मानते हैं। वृत्ति में 'सर्वज्ञत्वस्य यद् वीजम्' कहा है, शायद इससे 'सार्वज्ञ्य' पाठ की सत्ता ज्ञात होती है। वाचस्पति आदि 'सर्वज्ञ' पाठ को मानते हैं। 'भावप्रधानो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निर्देशः' मानकर सर्वज्ञ का तात्पर्य सार्वज्ञ्य माना जा सकता है। ज्ञानवाची 'ज्ञ' शब्द से सर्वज्ञान-सर्वज्ञ मानकर भी सार्वज्ञ्य (स्वार्थ में ष्यञ्) शब्द उपपन्न ऐसा हो सकता है। कोई-कोई व्याख्याकार 'सर्वज्ञ हिरण्यगर्भादि का वीज' ऐसा अर्थ भी करते हैं (योगरहस्य)। मणिप्रभाकर 'निरतिशयं ज्ञानं सर्वज्ञस्य वीजं ज्ञापकम्' कहते हैं।

(६) १।२६ सूत्र में 'कालेनानवच्छेदात्' के स्थान पर 'कालानवच्छेदात्' पाठ क्वचित् मिलता है। यह लिपिकर या संपादक द्वारा कल्पित पाठ है, (असमस्त पद के स्थान पर समस्त पद की कल्पना यहाँ की गई है)।

(७) १।४२ सूत्र में 'समापत्ति' शब्द कहीं-कहीं पठित नहीं है। संभवतः इस मत के अनुयायी यह समझते हैं कि १।४१ सूत्र से समापत्ति की अनुवृत्ति हो ही जायेगी, अतः १।४२ सूत्र में समापत्ति शब्द का ग्रहण व्यर्थ है। व्याख्याकारों की वहुसंमति 'समापत्ति'-युक्त सूत्र को ही मानती है।

(८) १।४९ सूत्र में 'श्रुत' के स्थान पर 'श्रौत' पाठ कहीं-कहीं मुद्रित हुआ है, श्रुति से जात या संवद्ध = श्रौत। श्रुत पाठ के अनुयायी यह समझते हैं कि श्रुत (= आगम) जात प्रज्ञा = श्रुतप्रज्ञा। 'श्रुता' यह प्रज्ञा का विशेषण है, ऐसा भो कहा जा सकता है; तव सूत्र में अनुमान के स्थान पर अनुमेय शब्द का पाठ करना अधिक संगत होगा, जैसा कि किसी किसी व्याख्याकार ने दिखाया भी है। इसी सूत्र में 'अन्यविषया' (सामान्यविषया के स्थान पर) पाठान्तर है। यहाँ मूल पाठ (अन्यविषया) का लक्ष्य 'सामान्यविषया' ही है, क्योंकि साक्षात्कारवती ऋतम्भरा प्रज्ञा यदि 'विशेषविषया' हो, तो श्रुतानुमानप्रज्ञा 'सामान्यविषया' ही होगी, अतः स्पष्टता के लिये 'अन्यविषया' के स्थान पर 'सामान्यविषया' पाठ वाद में प्रचलित हो गया था। व्याख्याकारों के व्याख्यान शब्द भी इस पाठान्तर का एक हेतु है।

(९) १।५० सूत्र में 'प्रतिवन्धी' के स्थान पर 'विरोधी' पाठ मिलता है। अर्थस्पष्टता के लिये यह पाठान्तर वाद में कल्पित हुआ होगा। सभी प्राचीन व्याख्याकार 'प्रतिवन्धी' पाठ को ही मानते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(१०) २।३ सूत्र में 'पञ्च' पाठ किसी-किसी संस्करण में नहीं मिलता। भाष्य में 'कियन्तो वा' ऐसी पातनिका है, अतः प्राचीनतम सूत्रपाठ में 'पञ्च' शब्द था, यह निश्चित है। अप्रयोजनीयता के कारण बाद में 'पञ्च' शब्द का पाठ व्यक्त हुआ है; अति प्राचीन सूत्रों में संख्या-शब्दों का प्रयोग सदोष नहीं माना जाता था, यह ज्ञातव्य हैं। *

(११) २।९ सूत्र में 'तन्वनुबन्धोऽभिनिवेशः' पाठ भोजवृत्ति में ही मिलता है, यद्यपि अन्य व्याख्यानों के अनुसार 'तथारूढोऽभिनिवेशः' पाठ ही सिद्ध होता है। अभिनिवेश क्लेश की व्याख्या में 'शरीर से मेरा वियोग न हो' ऐसा कहा जाता है, अतः 'तन्वनुबन्ध' रूप पाठान्तर ('तथारूढ' के स्थान पर) उत्पन्न हो गया है। 'तथारूढ' शब्द की अपेक्षा यह शब्द अधिक स्पष्ट है, यह भी इस पाठान्तर का एक कारण है। हम समझते हैं कि भोज ने 'तथारुढ' की व्याख्या ही की है (प्रतीक न देकर), जिसमें इस नूतन पाठ की कल्पना संपादकों को करनी पड़ी। मूल पाठ 'तथारुढ' ही है।

(१२) २।२५ सूत्र में 'तदभावे' पाठ संस्करणविशेष में मुद्रित मिलता है। 'अविद्या के अभाव होने के कारण संयोग का अभाव होता है' इस दृष्टि से 'तदभाव' शब्द से पञ्चमी (हेतु में पञ्चमी) विभक्ति स्वरसतः प्राप्त है। प्राचीन व्याख्यान के अनुसार 'तदभावात्' पाठ ही संगत है। भोजवृत्ति में 'तस्मिन् सति योऽयमभावः' ऐसा कहा गया है जिससे 'अभाव' शब्द में सप्तमी विभक्ति की संभावना संपादकों ने की है।

---

* सत्त्वरजस्तमसां.....................पञ्चविंशतिर्गणः (सांख्यसूत्र १।६१); इत्येकविंशतिर्गोनामानि (निघण्टु का गोनाम)। सांख्यतत्त्वसमाससूत्र में तो प्रतिपद संख्या-शब्द प्रयुक्त हुआ है। संख्येयों को कहने के बाद संख्या का कथन क्यों किया जाता है, इस पर डल्हण कहते हैं—"अत्र संख्येयद्वारेणैव संख्यालाभे सति द्वात्रिंशत्-संख्योपादानं नियमार्थं कृतम्" (सुश्रुत, उत्तर तन्त्र ६५।१)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(१३) २।२७ सूत्र में 'प्रान्तभूमौ' पाठ भोजवृत्ति के अनुसार स्पष्टतया सिद्ध होता है। प्राचीन व्याख्यानों में 'प्रान्तभूमिः' पाठ ही है। प्रज्ञा किसी भूमि पर आश्रित अवश्य रहेगी, स्वतः स्थिर नहीं रह सकती--इस चिन्ता से संभवतः यह नया पाठ कल्पित किया गया था। 'प्रान्तभूमिः प्रज्ञा' पाठ भी सर्वथा निर्दोष है।

(१४) २।४१ सूत्र में भोजानुसार 'एकाग्रता' पाठ ही संगत ज्ञात होता है, क्योंकि वृत्ति में एकाग्रता शब्द ही व्याख्यात हुआ है, (इसका पाठान्तर नहीं दृष्ट होता)। अन्यान्य व्याख्याकार 'ऐकाग्र्य' पाठ मानते हैं।

(१५) २।४७ सूत्र में 'आनन्त्य' शब्द भोजसंमत है, जब कि भाष्य तथा अन्य व्याख्याओं में 'अनन्त' शब्द स्वीकृत हुआ है। 'अनन्त' पाठ करने पर भी उसका तात्पर्य 'आनन्त्य' में ही होगा (अनन्त एव आनन्त्यम्)। सम्भवतः इसके कारण ही 'अनन्त' के स्थान पर 'आनन्त्य' पाठ बाद में कल्पित किया गया होगा। इस प्रसङ्ग में विवरणटीका द्रष्टव्य है। 'अनन्त' विशेष्य पद भी हो सकता है, विशेषणपद भी, यहाँ विशेष्य इष्ट है, जो आनन्त्य पाठ के मानने पर स्फुटतर हो जाता है, अतः 'आनन्त्य' पाठ प्रचलित हुआ होगा।

(१६) ३।१२ सूत्र में 'ततः पुनः' शब्द कहीं-कहीं पठित हुआ है। हमारी दृष्टि में यदि सूत्र में 'ततः पुनः' पढ़ा जाय तो अर्थ में अधिक पुष्कलता आती है, क्योंकि 'ततः' का अर्थ होगा—'समाधि परिणाम में', अतः ३।१२ सूत्र समाधिपरिणामान्तर्गत एकाग्रतापरिणाम से ही संबद्ध होगा। यह इष्ट है। कोई-कोई व्याख्याकार 'ततः पुनः' अंश को भाष्यवाक्य समझते हैं। भोज इस अंश को सूत्रान्तर्गत नहीं समझते थे, ऐसा प्रतीत होता है।

(१७) ३।२१ सूत्र में भोजवृत्ति में 'असंयोग' पद पठित हुआ है, जब कि अन्य व्याख्या में 'असंप्रयोग' शब्द है। ऐसा प्रतीत होता है कि भोज ने यहां वृत्ति में 'असंप्रयोग' के अर्थ में ही 'असंयोग' शब्द का प्रयोग किया है, 'असंप्रयोग' को प्रतीक रूप से उन्होंने नहीं पढ़ा। 'असंप्रयोग' शब्द का प्रयोग भाष्यादि प्राचीनतर ग्रन्थों में स्वीकृत हुआ है, अतः ऐसी कल्पना संगत जँचती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(१८) ३।३५ सूत्र में 'प्रत्ययाविशेषो भोगः' और 'प्रत्ययाविशेषाद्भोगः'— ऐसे दो पाठों की संभावना प्रतीत होती है। उसी प्रकार 'परार्थात् स्वार्थसंयमात्' और 'परार्थान्यस्वार्थसंयमात्' पाठद्वय की संभावना है। अर्थ की दृष्टि से 'प्रत्ययाविशेषो भोगः' अधिक संगत है, क्योंकि प्रत्ययविशेष से भोग उत्पन्न नहीं होता, बल्कि प्रत्ययाविशेष ही भोग है। (द्र० इष्टानिष्टगुणस्वरूपावधारणं भोगः–व्यासभाष्य २।१९········)। 'परार्थान्य········' पाठ व्याख्याकारों के व्याख्यान-शब्दों को देखकर कल्पित किया गया है, वस्तुत; 'परार्थात्' पाठ ही सौत्र है।

(१९) ३।४० सूत्र में भोजवृत्ति के अनुसार 'प्रज्वलनम्' पाठ ही उचित जंचता है, यद्यपि अन्यान्य व्याख्याकार 'ज्वलनम्' पाठ के पक्षपाती है। सूत्र में 'ज्वलन' पाठ के रहने पर भी व्याख्यान में 'प्रज्वलन' शब्द का व्यवहार किया ही जा सकता है (यदि वह प्रतीक न हो)।

(२०) ३।३१ सूत्र में भोज के अनुसार 'स्वाम्युपनिमन्त्रण' पाठ सिद्ध होता है, जब कि अन्य व्याख्या में 'स्थान्युपनिमन्त्रण' पाठ है। हमारी दृष्टि में सूत्र का प्राचीन पाठ 'स्थान्युप········' है। यहाँ स्वामि-पाठ करने से भाष्यवाक्य (ब्राह्मणस्य स्थानिनो देवा········) उपपन्न नहीं होता। टीकाकारों ने स्थान शब्द की शाब्दिक व्याख्या भी की है। भोजवृत्ति में 'स्वामिनः' पाठ भ्रष्ट है, वस्तुतः वह 'स्थानिनः' होना चाहिये। भोज ने 'स्वामिनः' पद की कोई व्याख्या भी नहीं की, अतः यह लिपिकर-प्रमाद है, ऐसा भी माना जा सकता है।

(२१) ३।५२ सूत्र में 'विवेकज्ञानम्' पाठ भोजवृत्ति के किसी-किसी संस्करण में है, पर यह अशुद्ध है; प्रकृत पाठ 'विवेकज' ही होगा।

(२२) ४।१२ सूत्र के कई पाठभेद दृष्ट होते हैं, पर वे सब व्याख्यान-शब्दों को देखकर कल्पित किए गए पाठभेद हैं, प्रकृत पाठ 'अतीतानागतं स्वरूपतो-ऽस्त्यध्वभेदाद् धर्माणम्' ही है।

(२३) ४।१५–भोजवृत्ति में 'विविक्तः' पाठ है ('विभक्तः' के स्थान पर)। भाष्यादि में 'विभक्तः' पाठ है। अर्थदृष्टि में दोनों ही संगत हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(२४) ४।१७'अपरिणामित्वात्' और 'अपरिणामात्' ये दो पाठ मिलते हैं यहाँ ग्रन्थस्वारस्य के अनुसार 'अपरिणामित्वात्' पाठ संगततर है और भोज भ्रम इस पाठ के अनुयायी हैं, ऐसा माना जा सकता है।

(२५) ४।२४ भोजवृत्ति के अनुसार 'निवृत्ति' पाठ ही है, जब कि अन्य व्याख्या में 'विनिवृत्ति' पाठ माना गया है। यह अकिञ्चित्कर पाठभेद है सूत्र में 'विनिवृत्ति' रहने पर भी व्याख्या में 'निवृत्ति' शब्द प्रयुक्त हो सकता है यदि वह प्रतीक न हो।

(२६) ४।३३ सूत्र में भोजवृत्ति के अनुसार 'चितिशक्ते:' पाठ ही है, ऐस स्पष्टतया ज्ञात होता है। इस सूत्र का जो पाठ भास्करराय ने उद्धृत किया है उसमें भी 'चित्तिशक्तेः' पाठ ही है (ललितासहस्रनामभाष्य पृष्ठ—१३२)। षष्ठ्यन्त्य (चित्तिशक्तेः) पाठ में भी अर्थ की संगति रहती है। कुछ अन्य व्याख्याकार भी 'चित्तिशक्तेः' पाठ को मानते हैं। प्रथमान्त पाठ में (जो भाष्यादि-समर्थित है) 'स्वरूप-प्रतिष्ठा' शब्द चितिशक्ति का विशेषण है, जिससे योगशास्त्रीय दृष्टि ही समर्थित होती है।

वृत्तिकार भोज का परिचय—धाराधीश्वर परमारवंशीय महाराज भोज के पिता का नाम 'सिन्धुल' है। कोई कोई इनको 'सिन्धुराज' कहते हैं। भोज का एक नाम 'रणरङ्गमल्ल' था (सम्भवतः यह उनकी उपाधि थी) भोज की माता का नाम सावित्री था। इनका पुत्र जयसिंह था। ऐसा कहा जाता है कि इनकी स्त्री का नाम लीलावती और कन्या का नाम भानुमती था (सनत्सुजातीयग्रन्थ का परिशिष्ट पृ० ६७०)।

भोज ने अवन्तिका से राजधानी को उठाकर, धारानगरी की स्थापना की थी। यह नगरी अनेक ऐतिहासिक अवशेषों से पूर्ण है। यहाँ विद्या-प्रेमी भोज ने एक सरस्वती-मन्दिर भी बनाया था। इसमें एक सरस्वतीप्रतिमा भी थी, जो इस समय इंग्लेंड के ऐतिहासिक संग्रहालय में है। संभवतः भोज "शैव" थे, यह उनके मङ्गलाचरण श्लोकों से अनुमित होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भोज की दानशूरता प्रसिद्ध है। इनके कई ताम्रपत्र मिल चुके हैं। ंमट, मेरुतुङ्ग, वल्लालसेन आदि के ग्रन्थों से भोज के सर्वत:प्रसारी यशः ज्ञान हो जाता है। भोजेश्वर, रामेश्वर आदि अनेक मन्दिरों के वे र्माता थे।

धनुर्विद्या में भोजराज की प्रशंसा कोदण्डमण्डन-ग्रन्थ में मिलती (१।५)। सोमनाथ पर मुहम्मद गजनवी के आक्रमण को भोज ने प्रतिहत या था।

जैन विद्वानों से भी राजा भोज का प्रीतिमय सम्पर्क था। इस विषय में क्तामर-चरित' द्रष्टव्य है। कहा जाता है कि राजमार्तण्ड नामक जैन न्दर का निर्माण भोज ने किया था।

भोज का काल निश्चित ही है। सामान्यतया संवत् १०७५—१११० १०१९—१०५४ ई०) तक इनका राज्यकाल ऐतिहासिकों ने माना है। ज १०६२ ई० तक जीवित थे, इसका प्रमाण मिलता है (कीथ-कृत History of Sanskrit Literature, पृ० १५३)। भोज की न प्रशस्तियाँ (विक्रम सं० १०७४, १०७६, १०७८) और धारास्थित स्वती का लेख (विक्रम सं० १०९१)—ये चार वस्तु मिल चुकी हैं।

विद्याप्रस्थानों में भोज का प्रामाण्य—योगविद्या के अतिरिक्त—ान्य शास्त्रों में भी भोज का प्रामाण्य माना जाता है, इस विषय में कुछ ाद्ध स्थल उद्धृत किए जा रहे हैं—

१—अमरकोश की टीका में क्षीरस्वामी ने अनेकधा श्रीभोज के मतों का न्यास किया है (पृ० ४१, १७, हरदत्त शर्मा संस्करण)।

२—क्षीरतरङ्गिणी (रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रकाशित अस्मदीय संस्करण) भोज के शब्दसंबन्धी मत उद्धृत हुए हैं (पृ० १४, ११२, ११४, १५४)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—सुभूतिचन्द्रकृत अमरकोश टीका में भी भोजमत उद्धृत है। गोडे कृत Date of Subhuti Chandra's commentary the Amarakosa लेख (Kuppuswami Shastri commoration Volume पृ० ४७–५१) ।

४—अष्टाङ्गहृदय की केरली व्याख्या में (पृ० ४०३) भोज के उद्धृत हैं (कर्णयोरुपरिष्टाच्च······) ।

५—डल्हण ने सुश्रुतटीका में भोजमत का उल्लेख किया है।

६—चिकित्सासंग्रह और उसकी टीका तत्त्वचन्द्रिका में भोजमत हैं (पृ० ३७० वंगीय संस्करण) ।

७—गन्धवाद-परक ग्रन्थों में धारेश्वर भोज के मत निर्दिष्ट हुए हैं विषय में गोडेकृत A Rare Manuscript of Gandhasastr द्रष्टव्य है (New Indian Antiquary Vol. vii pp. 185–

८—विमलबोधकृत विराटपर्व की टीका में भोजमत उद्धृत है (१७। "भोजस्त्वाह सर्वशुक्लेव राजहंसीव माहेयी महनीयतरा, पक्षे मानससर प्राप्ता वने वह्नौ जाता" । भोज के किस ग्रन्थ से यह उद्धरण लिया यह अनुसन्धेय है ।

९—राघवभट्ट कृत शकुन्तलाटीका (पृ० ५५) में भोजवाक्य उद्धृ

१०—लक्ष्मणभट्ट कृत पद्यरचना (काव्यमाला में प्रकाशित सुभाषित में भोज का पद्य उद्धृत है (पृ० १०१) ।

११—शंकर कृत वास्तुशिरोमणि (अमुद्रित) ग्रन्थ में धारेश्वर भो राजमार्तण्ड-नामक ज्योतिष-ग्रन्थ के वाक्य उद्धृत हैं (पृ०१८,१३६) विषय में गोडेकृत 'Vastusiromani, a work on Architu by Samkara (A.B.O.R.I. Vol. XXXV. pp. 35– द्रष्टव्य है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१२—लक्ष्मण पण्डित कृत अद्वैतसुधा में भोज-मत बहुधा निर्दिष्ट हुए हैं,—
Exact date the of Advaitasudha of Laksmana andit and his possible identity with Laksmanarya Poona Orientalist Vol. iv. Nos.1-2.)

इसके अतिरिक्त और भी अनेक विद्वानों ने सबहुमान भोज का उल्लेख या है, यथा—शूलपाणि (प्रायश्चित्तविवेक में), रघुनन्दन (अष्टाविंशति तितत्त्व में) आदि। इस विषय में History of the Dharma-stra (Vol. I, section 64) द्रष्टव्य है।

भोज के ग्रन्थ—*भोज ने योगवृत्ति के आरम्भ में कहा है कि उन्होंने दानुशासन, पातञ्जलवृत्ति, और वैद्यक में राजमृगाङ्क नामक ग्रन्थों की ना की है—

शब्दानामनुशासनं विदधता पातञ्जले कुर्वता
वृत्तिं राजमृगाङ्कसंज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके।
वाक्चेतोवपुषां मलः फणिभृतां भर्त्रेव येनोद्धृतः
तस्य श्रीरणरङ्गमल्लनृपतेर्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः॥

यह शब्दानुशासन 'सरस्वतीकण्ठाभरण' ही है। इस व्याकरण के विषय में शद विचार 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' ग्रन्थ में द्रष्टव्य है ष्ठ ५५३–५६० द्वितीय संस्करण)। पातञ्जलवृत्ति योगसूत्र पर वृत्ति ही है, न पातञ्जलमहाभाष्य पर कोई वृत्ति, यह ज्ञातव्य है। योगसूत्रवृत्ति का प्रकृत भम 'राजमार्त्तण्डवृत्ति' है।

---

* विश्वेश्वरनाथ रेउकृत 'राजा भोज' ग्रन्थ द्रष्टव्य है (पृष्ठ २३६–३१२)। ें भोजकृत ग्रन्थों का अतिविशद परिचय मिलता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वैद्यक में 'राजमृगाङ्क' † नामक ग्रन्थ भोज ने रचा था, यह यहाँ स्प
कहा गया है, पर यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। आफ्रेक्ट की बृहत्सू
'राजमृगाङ्क' नाम के आगे ज्योतिष और वैद्यक--इन दोनों के नाम दि
यह ज्ञातव्य है।

करणसम्बन्धी 'राजमृगाङ्क' ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ की भोजक
पर संशय है।

भोज के निम्नोक्त ग्रन्थ भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं---सरस्वतीकण्ठा
(अलंकारशास्त्र), शृङ्गारप्रकाश (अलंकारशास्त्र), समराङ्गणसू
(शिल्प-रणादिपरक), युक्तिकल्पतरु (शिल्प-वास्तु-यन्त्रादिपरक),
प्रकाश (शैवमत)। 'भुजबलनिबन्ध' आदि कई ग्रन्थ भोज के नाम से प्रसि
पर उनकी भोजकर्तृकता सन्दिग्ध है।

महाराज भोज हमारे देश के आदर्श नरपति हैं। विद्या, विक्रम और
के क्षेत्र में उनका कार्य चिरस्मरणीय रहेगा। वे संस्कृत भाषा के भी पुनरु
हैं, अतः आज—जब कि यह देवभाषा एकबार पुनः अपनी पूर्वस्थिति को
करने के लिये सतत प्रयत्न कर रही है—उनका स्मरण करना हमारा क

---

† काणेमहोदय ने 'शब्दानामनुशासनम्·····' श्लोक का उल्लेख कर भी राजमृ
ग्रन्थ के विषय में कुछ नहीं कहा (H. Dh. S. पृष्ठ २७६)। राजमा
नामक वैद्यक ग्रन्थ भोजकृत है और यह प्रसिद्ध भी है। P. T. Sriniv
Ayyangar कृत Bhoj Raja ग्रन्थ (सप्तमाध्याय) में भोजग्रन्थो
चर्चा है; यहाँ वैद्यक-ग्रन्थों में 'राजमृगाङ्क' ग्रन्थ का नाम नहीं है,
ज्योतिषग्रन्थों में इस ग्रन्थ का नाम है। 'राजमृगाङ्क' ग्रन्थ की इस स्थिति
देखकर ऐसा अनुमान होता है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि श्लोक का
'व्यातन्वता वैद्यके' के स्थान पर 'ज्योतिषे' ही है ? पर ऐसा नहीं हो सक
क्योंकि बाद में भोज 'वाक्चेतोवपुषां' कहते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हो जाता है। उनके दिव्य गुणकर्मों का स्मरण कर संपादक उनकी कृति को उन्हें ही समर्पित कर रहा है—

विद्वत्पालो जितरिपुबलो नैकविद्यासु रक्तः
श्रीमान् धारापतिरिति गुणग्राहिणो यं स्मरन्ति ।
तस्मै राजोचितगुणयुजे तत्कृता वृत्तिरेषा
प्रेमश्रद्धानयविनयतो ह्यर्प्यंते शंकरेण ।।

अनन्तचतुर्दशी
२-९-१९६३

विदुषामनुचरः
श्री रामशंकर भट्टाचार्यः

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पातञ्जलयोगसूत्रम्

धारेश्वरभोजदेवविरचितराजमार्तण्डवृत्तिसमेतम्

देहार्द्धयोगः शिवयोः सः श्रेयांसि तनोतु वः ।
दुष्प्रापमपि यत्स्मृत्या जनः कैवल्यमश्नुते ॥ १ ॥
त्रिविधान्यपि दुःखानि यदनुस्मरणान्नृणाम् ।
प्रयान्ति सद्यो विलयं तं स्तुमः शिवमव्ययम् ॥ २ ॥
पतञ्जलिमुनेरुक्तिः काप्यपूर्वा जयत्यसौ ।
पुं-प्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्युदितो यया* ॥ ३ ॥

जयन्ति वाचः फणिभर्त्तुरान्तर-
स्फुरत्तमस्तोमनिशाकरत्विषः ।
विभाव्यमानाः सततं मनांसि याः
सतां सदानन्दमयानि कुर्वते ॥ ४ ॥

शब्दानामनुशासनं विदधता पातञ्जले कुर्वता
वृत्तिं राजमृगाङ्कसंज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके ।
वाक्-चेतो-वपुषां मलः फणिभृतां भर्त्रेव येनोद्धृत-
स्तस्य श्रीरणरङ्गमल्लनृपतेर्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः ॥ ५ ॥ ()
दुर्बोधं यदतीव तद्धि जहति‡ स्पष्टार्थमित्युक्तिभिः
स्पष्टार्थेष्वतिविस्तृतिं विदधति व्यर्थैः समासादिकैः ।
अस्थानेऽनुपयोगिभिश्च बहुभिर्जल्पैर्भ्रमं तन्वते
श्रोतॄणामिति वस्तुविप्लवकृतः सर्वेऽपि टीकाकृतः ॥ ६ ॥

---

* यथा (पाठा०) ।
() भूमिकायां श्लोकोऽयं व्याख्यातः ।
‡ तद् विजहति (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उत्सृज्य विस्तरमुदस्य विकल्पजालं
फल्गुप्रकाशमवधार्य्य च सम्यगर्थान् ।
सन्तः पतञ्जलिमते विवृतिर्मयेय-
मातन्यते बुधजनप्रतिबोधहेतुः ॥ ७ ॥

अथ योगानुशासनम् ॥ १ ॥

अनेन सूत्रेण शास्त्रस्य सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनान्याख्यायन्ते । अथशब्दोऽधिकारद्योतको मङ्गलार्थकश्च । योगो युक्तिः समाधानम् । युज समाधौ (धा० पा० ४।६७)। अनुशिष्यते व्याख्यायते लक्षणभेदोपायफलैर्येन तदनुशासनम्, योगस्यानुशासनं योगानुशासनं, तद् आ-शास्त्रपरिसमाप्तेरधिकृतं बोद्धव्यमित्यर्थः । तत्र शास्त्रस्य व्युत्पाद्यतया योगः ससाधनः सफलोऽभिधेयः । तद्व्युत्पादनञ्च फलम् । व्युत्पादितस्य योगस्य कैवल्यं फलम् । शास्त्राभिधेययोः प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभावः* सम्बन्धः । अभिधेयस्य योगस्य तत्फलस्य च कैवल्यस्य :: साध्य-साधनभावः । एतदुक्तं भवति—व्युत्पाद्यस्य योगस्य साधनानि शास्त्रेण प्रदर्श्यन्ते, तत्साधनसिद्धो योगः कैवल्याख्यं फलमुत्पादयति ॥ १ ॥

तत्र को योग इत्याह() —

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ २ ॥

चित्तस्य निर्मलसत्त्वपरिणामरूपस्य या वृत्तयोऽङ्गाङ्गिभावपरिणामरूपाः तासां निरोधो बहिर्मुखतया परिणतिविच्छेदादन्तर्मुखतया प्रतिलोमपरिणामेन स्वकारणे लयो योग इत्याख्यायते । स च निरोधः सर्वासां चित्तभूमीनां सर्वप्राणिनां धर्मः कदाचित् कस्याञ्चिद् भूमावाविर्भवति । ताश्च क्षिप्तं, मूढं, विक्षिप्तम्, एकाग्रं, निरुद्धमिति चित्तभूमयः, चित्तस्यावस्थाविशेषाः । तत्र क्षिप्तं रजस उद्रेकादस्थिरं बहिर्मुखतया सुखदुःखादिविषयेषु विकल्पितेषु व्यवहितेषु※ वा रजसा प्रेरि

---

* भावलक्षणः (पाठा०) । :: कैवल्येन (पाठा०) । () इत्यत आह (पाठा०)
※ संनिहितेषु इत्यधिकं क्वचित् ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तच्च सदैव दैत्यदानवादीनाम् । मूढं तमस उद्रेकात् कृत्याकृत्य-विभागमन्तरेण* क्रोधादिभिः विरुद्धकृत्येष्वेव नियमितं, तच्च सदैव रक्षः-पिशाचादीनाम् । विक्षिप्तं तु सत्त्वोद्रेकात् वैशिष्ट्येन परिहृत्य दुःखसाधनं सुखसाधनेष्वेव शब्दादिषु प्रवृत्तं, तच्च सदैव देवानाम् । एतदुक्तं भवति—रजसा प्रवृत्तिरूपं, तमसा परापकारनियतं,‡ सत्त्वेन सुखमयं चित्तं भवति । एतास्तिस्रश्चित्तावस्थाः समाधावनुपयोगिन्यः, एकाग्र-निरुद्धरूपे द्वे च सत्त्वोत्कर्षाद् यथोत्तरमवस्थितत्वात् समाधावुपयोगं भजेते; सत्त्वादिक्रमव्युत्क्रमे त्वयमभिप्रायः,—द्वयोरपि रजस्तमसोरत्यन्तहेयत्वेऽप्येतदर्थं रजसः प्रथममुपादानं, यावन्न प्रवृत्तिर्दर्शिता तावन्निवृत्तिर्न शक्यते दर्शयितुमिति द्वयोर्व्यत्ययेन प्रदर्शनम् । सत्त्वस्य त्वेतदर्थं पश्चात् प्रदर्शनं यत्, तस्योत्कर्षेणोत्तरे द्वे भूमी योगोपयोगिन्याविति । अनयोर्द्वयोरेकाग्र-निरुद्धयोर्भूम्योर्यश्चित्तस्यैकाग्रतारूपः परिणामः, स योग इत्युक्तं भवति । एकाग्रे बहिर्वृत्तिनिरोधः, निरुद्धे च सर्वासां वृत्तीनां संस्काराणां च प्रविलय इत्यनयोरेव भूम्योर्योगस्य सम्भवः ॥२॥

इदानीं सूत्रकारश्चित्तवृत्तिनिरोधपदानि व्याख्यातुकामः प्रथमं चित्तपदं व्याचष्टे—

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ ३ ॥

द्रष्टुः पुरुषस्य तस्मिन् काले स्वरूपे चिन्मात्र :: तायामवस्थानं स्थितिर्भवति । अयमर्थः—उत्पन्नविवेकख्यातेः चित्सङ्क्रमाभावात् कर्तृत्वाभिमाननिवृत्तौ () प्रोच्छन्नपरिणामायां बुद्धावात्मनः स्वरूपेणावस्थानं स्थितिर्भवति ॥३॥

व्युत्थानदशायान्तु तस्य किं रूपम् इत्याह—

वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ ४ ॥

इतरत्र योगादन्यस्मिन् काले, वृत्तयो या वक्ष्यमाणलक्षणाः, ताभिः सारूप्यं तद्रूपत्वम् । अयमर्थः—यादृश्यो वृत्तयः सुखदुःखमोहात्मिकाः ❀

---

* मगणयत् क्रोधात् (पाठा०) । ‡ निरतं (पाठा०) :: रूपतायाम् (पाठा०) () प्रोन्मुक्त (पाठा०) । ❀ दुःखमोहसुखाद्यात्मिकाः (पाठा०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रादुर्भवन्ति, तादृग्रूप एव संवेद्यते व्यवहर्त्तृभिः पुरुषः; । तदेवं यस्मिन् एकाग्रतया परिणते चितिशक्तेः* स्वस्मिन् रूपे प्रतिष्ठानं भवति, यस्मिंश्च इन्द्रियवृत्तिद्वारेण विषयाकारेण परिणते पुरुषस्तद्रूपाकार इव परिभाव्यते यथा जलतरङ्गेषु चलत्सु चन्द्रश्चलन्निव प्रतिभासते, तच्चित्तम् ॥ ४ ॥

वृत्तिपदं व्याख्यातुमाह—

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा अक्लिष्टाः() ॥ ५ ॥

वृत्तयश्चित्तपरिणामविशेषाः । वृत्तिसमुदायलक्षणस्य अवयविनो ः अवयवभूता वृत्तयः, तदपेक्षया तय-प्रत्ययः (अष्टा० ५।२।४२) । एतदुक्तं भवति पञ्च वृत्तयः कीदृश्यः ? क्लिष्टाः अक्लिष्टाः, क्लेशैर्वक्ष्यमाणलक्षणैराक्रान्ता क्लिष्टाः, तद्विपरीता अक्लिष्टाः ॥ ५ ॥

एता एव पञ्च वृत्तयः सङ्क्षिप्य उद्दिश्यन्ते—

प्रमाण-विपर्य्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतयः ॥ ६ ॥

आसां क्रमेण लक्षणमाह—

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥ ७ ॥

अत्रातिप्रसिद्धत्वात् प्रमाणानां शास्त्रकारेण भेदनिरूपणेनैव‡ गतत्वा लक्षणस्य पृथक् लक्षणं न कृतम् । प्रमाणलक्षणन्तु—अविसंवादि ज्ञानं प्रमाणमिति इन्द्रियद्वारेण बाह्यवस्तूपरागाच्चित्तस्य तद्विषय-सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारणप्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षम् । गृहीत-सम्बन्धाल् लिङ्गात् लिङ्गि सामान्याध्यवसायोऽनुमानम् । आप्तवचनम् आगमः ॥ ७ ॥

एवं प्रमाणरूपां वृत्तिं व्याख्याय विपर्य्ययरूपामाह—

विपर्य्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्ः: ॥ ८ ॥

अतथाभूतेऽर्थे तथोत्पद्यमानं ज्ञानं विपर्य्ययः । यथा शुक्तिकायां रजतज्ञानम्

*विविक्तः स्वस्मिन्रूपे प्रतिष्ठितो (पाठा०) । ()क्वचित् क्लिष्टाक्लिष्टा इति पाठः ‡भेदलक्षणेनैव (पाठा०) । ::प्रतिष्ठितमिति क्वचित् पाठः ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतद्रूपप्रतिष्ठमिति—तस्यार्थस्य यद्रूपं तस्मिन् रूपे न प्रतिष्ठति, तस्यार्थस्य यत् पारमार्थिकं रूपं न तत् प्रतिभासयतीति यावत् । संशयोऽप्यतद्रूपप्रतिष्ठित*त्वान्मिथ्याज्ञानं, यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वेति ॥ ८ ॥

विकल्पवृत्तिं व्याख्यातुमाह—

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ ९ ॥

शब्दजनितं ज्ञानं शब्दज्ञानं, तदनुपतितुं शीलं यस्य सः शब्दज्ञानानुपाती, वस्तुनस्तथात्वमनपेक्षमाणोऽध्यवसायः स विकल्प इत्युच्यते; यथा पुरुषस्य चैतन्यं स्वरूपमिति । अत्र देवदत्तस्य कम्बल इति शब्दजनिते ज्ञाने षष्ठ्या योऽध्यवसितो भेदः तमिहाविद्यमानमपि समारोप्य प्रवर्त्ततेऽध्यवसायः । वस्तुतस्तु चैतन्यमेव पुरुषः ॥ ९ ॥

निद्रां व्याख्यातुमाह—

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥

अभावप्रत्यय आलम्बनं यस्याः सा तथोक्ता । एतदुक्तं भवति—या सन्ततम् उद्रिक्तत्वात्तमसः समस्तविषयपरित्यागेन प्रवर्त्तते वृत्तिः सा निद्रा; तस्याश्च 'सुखमहमस्वाप्सम्' इति स्मृतिदर्शनात् स्मृतेश्चानुभवव्यतिरेकेणानुपपत्तेर्वृत्तित्वम् ॥ १० ॥

स्मृतिं व्याख्यातुमाह—

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ॥ ११ ॥

प्रमाणेनानुभूतस्य विषयस्य योऽयमसम्प्रमोषः संस्कारद्वारेण बुद्धावा‡रोहः, सा स्मृतिः । तत्र प्रमाण-विपर्य्यय-विकल्पा जाग्रदवस्थास्त एव तदनुभवबलात् ※प्रक्षीयमाणाः स्वप्नः । निद्रा तु असंवेद्यमानविषया । स्मृतिश्च प्रमाणविकल्पनिद्रानिमित्ता ॥ ११ ॥

---

* प्रतिष्ठितमिति (पाठा), प्रतिष्ठत्वाद् (पाठा०) । ‡ बुद्धावुपारोहः (पाठा०) ।
※ विकल्पो जाग्रदवस्थात एव तदनुभवबलात् प्रत्यक्षायमाणाः ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं वृत्तीर्व्याख्याय सोपायं निरोधं व्याख्यातुमाह—

अभ्यास-वैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।। १२ ।।

अभ्यास-वैराग्ये वक्ष्यमाणलक्षणे, ताभ्यां प्रकाश-प्रवृत्ति❀नियमरूपा या वृत्तय तासां निरोधो भवतीत्युक्तं भवति ; तासां विनिवृत्तवाह्याभिनिवेशानाम् अन्तर्मु तया स्वकारण एव चित्ते शक्तिरूपतयाऽवस्थानम् । तत्र विषयदोषदर्शनजे वैराग्येण तद्वैमुख्यमुत्पाद्यते, अभ्यासेन च सुखजनकं शान्तप्रवाहप्रदर्शनद्वारे दृढस्थैर्य्यमुत्पद्यते ; इत्थं ताभ्यां भवति चित्तवृत्तिनिरोधः ।।१२।।

अभ्यासं व्याख्यातुमाह—

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ।। १३ ।।

वृत्तिरहितस्य चित्तस्य स्वरूपनिष्ठः परिणामः स्थितिः, तस्यां यत्न उत्साह पुनः पुनस्तत्त्वेन‡ चेतसि निवेशनमभ्यास इति उच्यते ।।१३।।

तस्यैव विशेषमाह—

स तु दीर्घकालादरनैरन्तर्य्य-सत्कारासेवितो दृढभूमिः* ।।१४।।

वहुकालं नैरन्तर्य्येण आदरातिशयेन च सेव्यमानो दृढभूमिः स्थिरो भवति दार्ढ्याय प्रभवतीत्यर्थः ।।१४।।

वैराग्यस्य लक्षणमाह—

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ।।१५।।

द्विविधो हि विषयो दृष्ट आनुश्रविकश्च । दृष्ट इहैवोपलभ्यमानः शब्दादि देवलोकादावानुश्रविकः, अनुश्रूयते गुरुमुखादित्यनुश्रवो वेदः, ()तत्समधिगत आनु श्रविकः । तयोर्द्वयोरपि विषययोः परिणामविरसत्वदर्शनाद्विगतगर्द्धस्य या वशीकार संज्ञा 'ममैते वश्या नाहमेतेषां वश्य' इति योऽयं विमर्शः, तद्वैराग्यमुच्यते ।।१५।।

❀ वृत्ति (पाठा०) । ‡ तथात्वेन (पाठा०) । * सूत्रपाठविचारो भूमिकायां द्र० () तत आगतः (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्यैव विशेषमाह—

तत् परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥

तद्वैराग्यं परं प्रकृष्टं, प्रथमं वैराग्यं विषयविषयं, द्वितीयं गुणविषयम् उत्पन्नगुणपुरुषविवेकख्यातेरेव भवति, निरोधसमाधेरत्यन्तानुकूलत्वात् ॥१६॥

एवं योगस्य स्वरूपमुक्त्वा सम्प्रज्ञातस्व*रूपभेदमाह—

वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः ॥१७॥

समाधिरिति शेषः। सम्यक् संशयविपर्य्ययरहितत्वेन प्रज्ञायते प्रकर्षेण ज्ञायते भाव्यस्य रूपं येन स सम्प्रज्ञातः, समाधिर्भावनाविशेषः। स वितर्कादिभेदाच्चतुर्विधः, —सवितर्कः, सविचारः, सानन्दः, सास्मितश्च। भावना भाव्यस्य विषयान्तरपरिहारेण चेतसि पुनः पुनर्निवेशनम्। भाव्यञ्च द्विविधम्—ईश्वरस्तत्त्वानि च। तान्यपि द्विविधानि जडाजडभेदात्; जडानि चतुर्विंशतिः, अजडः पुरुषः। तत्र यदा महाभूतानि इन्द्रियाणि स्थूलानि विषयत्वेनादाय पूर्वापरानुसन्धानेन शब्दार्थोल्लेखसम्भेदेन च भावना क्रियते, तदा सवितर्कः समाधिः। अस्मिन्नेवावलम्बने पूर्वापरानुसन्धानशब्दोल्लेखशून्यत्वेन यदा भावना प्रवर्त्तते, तदा निर्वितर्कः। तन्मात्रान्तःकरणलक्षणं सूक्ष्मविषयमालम्ब्य तस्य देशकालधर्मावच्छेदेन यदा भावना, तदा सविचारः। तस्मिन्नेवावलम्बने देशकालधर्मावच्छेदं विना धर्मिमात्रावभासित्वेन भावना क्रियमाणा निर्विचार इत्युच्यते। एवंपर्य्यन्तः समाधिः ग्राह्यसमापत्तिरिति व्यपदिश्यते। यदा तु रजस्तमोलेशानुविद्धमन्तःकरणसत्त्वं भाव्यते, तदा गुणभावाच्चितिशक्तेः सुखप्रकाशमयस्य सत्त्वस्य भाव्यमानस्योद्रेकात् सानन्दः समाधिर्भवति। तस्मिन्नेव समाधौ ये बद्धधृतयस्तत्त्वान्तरं प्रधान-पुरुषरूपं न पश्यन्ति, ते विगतदेहाहङ्कारत्वाद्विदेहशब्दवाच्याः। इयं ग्रहणसमापत्तिः। ततः परं रजस्तमोलेशानभिभूतशुद्धसत्त्वमालम्बनीकृत्य या प्रवर्त्तते भावना, तस्यां ग्राह्यस्य न्यग्भावात् चितिशक्तेरुद्रेकात् सत्तामात्रावशेषत्वेन समाधिः सास्मित इत्युच्यते। न चाहङ्कारास्मितयोरभेदः शङ्कनीयः, यतो यत्रान्तःकरणम् 'अहमिति' उल्लेखेन विषयान् वेदयते, सोऽहङ्कारः, यत्रान्तर्मुखतया प्रतिलोमपरिणामे प्रकृतिलीने चेतसि

* रूपं भेदमाह (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सत्तामात्रम् अवभाति, साऽस्मिता। अस्मिन्नेव समाधौ ये कृतपरितोषाः पर॑ परमात्मानं पुरुषं न पश्यन्ति, तेषां चेतसि स्वकारणे लयमुपागते प्रकृतिल इत्युच्यन्ते; ये परं पुरुषं ज्ञात्वा भावनायां प्रवर्त्तन्ते, तेषामियं विवेकख्यातिग्र तृसमापत्तिरित्युच्यते। तत्र सम्प्रज्ञाते समाधौ चतस्रोऽवस्थाः शक्तिरूपतयाऽवतिष्ठ तत्रैकैकस्यास्त्याग उत्तरोत्त‡रेति चतुरवस्थोऽयं सम्प्रज्ञातः समाधिः ॥१७॥

असम्प्रज्ञातमाह—

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः* ॥१८॥

विरम्यतेऽनेनेति विरामो वितर्कादिचिन्तात्यागः; विरामश्चासौ प्रत्ययश्चे विरामप्रत्ययः, तस्याभ्यासः पौनःपुन्येन चेतसि निवेशनं, तत्र या काचित् वृत्ति रुल्लसति, तस्या 'नेति नेती' ति नैरन्तर्येण पर्य्युदसनं विरामप्रत्ययाभ्यासः, तत्पू सम्प्रज्ञातसमाधिः।' संस्कारशेषो () ऽन्यः तद्विलक्षणः, अयमसम्प्रज्ञात इत्यर्थः; तत्र किञ्चिद्वेद्यम्। असम्प्रज्ञातो निर्वीजः समाधिः। इह चतुर्विधः चित्त परिणामः,—व्युत्थानं, समाधिप्रारम्भः, एकाग्रता निरोधश्च। तत्र क्षिप्तमूढ़े चित्त भूमी व्युत्थानम्। विक्षिप्ता भूमिः सत्वोद्रेकात् समाधिप्रारम्भः। निरुद्धैका च पर्य्यन्तभूमी। प्रतिपरिणामञ्च संस्काराः; तत्र व्युत्थानजनिताः संस्कार समाधिप्रारम्भजैः संस्कारैः प्रत्याहन्यन्ते, तज्जाश्च एकाग्रताजैः, निरोधजनि रेकाग्रताजाः निरोधजाः संस्काराः स्वरूपञ्च हन्यन्ते; यथा सुवर्णसंवलि ध्मायमानं सीसकमात्मानं सुवर्णमलञ्च निर्दहति, एवमेकाग्रताजनितान् संस्कारा निरोधजाः स्वात्मानञ्च निर्दहन्ति ॥१८॥

तदेवं योगस्य स्वरूपं भेदञ्च सङ्क्षेपेणोपायांश्चाभिधाय विस्तररूपेणोपा योगाभ्यासप्रदर्शनपूर्वकमुपक्रमते—

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥ १९ ॥

विदेहाः प्रकृतिलयाश्च वितर्कादिभूमिकासूत्रे (१।१७) व्याख्याताः, तेषां समा

❀ परमिति क्वचिन्न। ‡ उत्तरोत्तरत्रेति (पाठा०)।

* क्वचित् संस्कारविशेष इति पठ्यते, सचापपाठः (द्र० भूमिका)।

() संस्कारविशेष इति क्वचित् पठ्यते, सचापपाठः।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भवप्रत्ययः, भवः संसारः, स एव प्रत्ययः कारणं यस्य स भवप्रत्ययः। अयमर्थः —आधिमात्रान्तर्भूताॐ एव ते संसारे तथाविधसमाधिभाजो भवन्ति,तेषां परतत्त्वादर्शनात् योगाभासोऽयम्; अतः परतत्त्वज्ञाने तद्भावनायाञ्च मुक्तिकामेन महान् यत्नो विधेय इत्येतदर्थमुपदिष्टम् ॥१९॥

तदन्येपान्तु--

श्रद्धावीर्य्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥२०॥

विदेह-प्रकृतिलयव्यतिरिक्तानां श्रद्धादिपूर्वकः, श्रद्धादयः पूर्वे उपाया यस्य स श्रद्धादिपूर्वकः; ते च श्रद्धादयः क्रमादुपायोपेयभावेन प्रवर्त्तमानाः सम्प्रज्ञातसमाधेरुपायतां प्रतिपद्यन्ते। तत्र श्रद्धा योगविपये चेतसः प्रसादः। वीर्य्यमुत्साहः। स्मृतिरनुभूतासम्प्रमोपः। समाधिरेकाग्रता। प्रज्ञा प्रज्ञातव्यविवेकः। तत्र श्रद्धावतो वीर्य्यं जायते, योगविपय उत्साहवान् भवति। सोत्साहस्य च पाश्चात्त्यानु‡भूमिपु स्मृतिरुत्पद्यते। तत्स्मरणाच्च चेतः समाधीयते। समाहितचित्तश्च भाव्यं सम्यक् विवेकेन जानाति। त एते सम्प्रज्ञातस्य समाधेरुपायाः, तस्याभ्यासात् पराच्च वैराग्याद् भवत्यसम्प्रज्ञातः ॥ २० ॥

उक्तोपायवतां योगिनाम् उपायभेदाद्भेदानाह—

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥

समाधिलाभः इति शेषः। संवेगः क्रियाहेतुर्दृढतरः संस्कारः, स तीव्रो येपामधिमात्रोपायानां तेपामासन्नः* समाधिलाभः समाधिफलञ्चासन्नं भवति, शीघ्रमेव सम्पद्यत इत्यर्थः ॥ २१ ॥

के ते तीव्रसंवेगा इत्याह—

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ॥ २२ ॥

तेभ्य उपायेभ्यो मृद्वादिभेदभिन्नेभ्य उपायवतां विशेपो भवति, मृदुर्मध्योऽधिमात्र इत्युपायभेदाः, ते प्रत्येकं मृदुसंवेग-मध्यसंवेग-तीव्रसंवेगभेदात् त्रिधा; तद्भेदेन च नव योगिनो भवन्ति, मृदूपायो मृदुसंवेगः मध्यसंवेगः तीव्रसंवेगश्च। मध्योपायो

ॐ आविर्भूत एव संसारे ते (पाठा०)। ‡ पाश्चात्त्यासु भूमिपु (पाठा०)।
* आसन्न इति क्वचिन्न।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मृदुसंवेगः मध्यसंवेगः तीव्रसंवेगश्च। अधिमात्रोपायो मृदुसंवेगो मध्यसंवेगस्तीव्रसंवेगः अधिमात्रे उपाये तीव्रे च संवेगे च महान् यत्नः कर्त्तव्य इति भेदोपदेशः ॥ २२ ॥

इदानीमेतदुपायविलक्षणं सुगममुपायान्तरं दर्शयितुमाह—

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥२३॥

ईश्वरो वक्ष्यमाणलक्षणः, तत्र प्रणिधानं भक्तिविशेषः, विशिष्टमुपासनं, स क्रियाणां तत्रार्पणं, विषयसुखादिकं फलमनिच्छन् सर्वाः क्रियास्तस्मिन् परमगु वर्पयति, तत्प्रणिधानं समाधेस्तत्फललाभस्य च प्रकृष्ट उपायः ॥ २३ ॥

ईश्वरस्य प्रणिधानात् समाधिलाभ इत्युक्तं, तत्रेश्वरस्य स्वरूपं प्रमाणं प्र वाचकम् उपासनाक्रमं तत्फलञ्च क्रमेण वक्तुमाह—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥२४॥

क्लिश्नन्तीति क्लेशा अविद्यादयो वक्ष्यमाणाः, विहितनि*षिद्धव्यामिश्ररूपा कर्माणि, विपच्यन्ते इति विपाकाः कर्मफलानि, जात्यायुर्भोगा आ-फलविपाका त्तभूमौ शेरत इत्याशयो वासनाख्यसंस्कारः, तैरपरामृष्टः त्रिष्वपि कालेषु न संस्पृ पुरुषविशेषः, अन्येभ्यः पुरुषेभ्यो विशिष्यते इति विशेषः, ईश्वर ईशनशीलः, इ मात्रेण सकलजगदुद्धरणक्षमः । यद्यपि सर्वेषामात्मनां क्लेशादिस्पर्शो ना तथापि चित्तगतास्तेषामुपदिश्यन्ते ; यथा योद्धृगतौ जय-पराजयौ स्वामि अस्य तु त्रिष्वपि कालेषु तथाविधोऽपि क्लेशादिपरामर्शो नास्ति, अतः सविल एव भगवानीश्वरः । तस्य च तथाविधमैश्वर्य्यमनादेः सत्त्वोत्कर्षात्, तस्य सत्त्वो त्कर्षस्य प्रकृष्टाज् ज्ञानादेव ; न चानयोर्ज्ञानैश्वर्य्ययोरितरेतराश्रयत्वं, परस्पर पेक्षत्वात् । ते द्वे ज्ञानैश्वर्य्ये ईश्वरसत्त्वे वर्त्तमाने अनादिभूते, तेन तथावि सत्त्वेन तस्यानादिरेव सम्बन्धः ; प्रकृति-पुरुषसंयोग-वियोगयोरीश्वरेच्छाव्यतिरेके नुपपत्तेः ; यथेतरेषां प्राणिनां सुख-दुःख-मोहात्मकतया परिणतं चित्तं नि सात्त्विके धर्मानुप्रख्ये() प्रतिसङ्क्रान्तं चिच्छायासङ्क्रान्ते संवेद्यं भवति, नैवमीश्वर तस्य केवल एव सात्त्विकः परिणाम उत्कर्षवान् अनादिसम्बन्धेन भोग्यतया

---

* प्रतिषिद्ध (पाठा०) । () धर्मात्मप्रख्ये (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थितः; अतः पुरुषान्तरविलक्षणतया स एव ईश्वरः। मुक्तात्मनान्तु पुनः पुनः क्लेशादियोगस्तैस्तैः शास्त्रोक्तै-रुपायैर्निवर्त्तितः ; अस्य पुनः सर्वदैव तथाविधत्वान्न मुक्तात्मतुल्यत्वं, न चेश्वराणामनेकत्वं, तेषां तुल्यत्वे भिन्नाभिप्रायत्वात् कार्य्यस्यैवानुपपत्तेः ; उत्कर्षापकर्षयुक्तत्वे य एवोत्कृष्टः, स एवेश्वरः, तत्रैव काष्ठाप्राप्तत्वादैश्वर्य्यस्य ॥ २४ ॥

एवमीश्वरस्य स्वरूपमभिधाय प्रमाणमाह—

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्* ॥ २५ ॥

तस्मिन् भगवति सर्वज्ञत्वस्य यद्बीजम् अतीतानागतादिग्रहणस्याल्पत्वं महत्त्वञ्च मूलत्वाद् बीजमिव बीजं, तत् तत्र निरतिशयं काष्ठां प्राप्तं; दृष्टा ह्यल्पत्व-महत्त्वादीनां धर्माणां सातिशयानां काष्ठाप्राप्तिः ; यथा परमाणावल्पत्वस्य, आकाशे परममहत्त्वस्य, एवं ज्ञानादयोऽपि चित्तधर्माः तारतम्येन परिदृश्यमानाः क्वचिन्निरतिशयतामासादयन्ति, यत्र चैते निरतिशयाः, स ईश्वरः। यद्यपि सामान्यमात्रेऽनुमानस्य() पर्य्यवसितत्वात् न विशेषावगतिः सम्भवति, तथाऽपि शास्त्रादस्य सर्वज्ञत्वादयो विशेषा अवगन्तव्याः। तस्य स्वप्रयोजनाभावे कथं प्रकृतिपुरुषयोः संयोग-वियोगौ आपादयतीति नाशङ्कनीयं, तस्य कारुणिकत्वाद् भूतानुग्रह एव प्रयोजनं, कल्पप्रलय-महाप्रलयेषु निःशेषान् संसारिण उद्धरिष्यामीति तस्याध्यवसायः ; यद् यस्येष्टं तत्तस्य प्रयोजनमिति ॥ २५ ॥

एवमीश्वरस्य प्रमाणमभिधाय प्रभावमाह—

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् :: ॥ २६ ॥

आद्यानां स्रष्टॄणां ब्रह्मादीनामपि स गुरुः उपदेष्टा, यतः स कालेन नावच्छिद्यते, अनादित्वात्। तेषां ब्रह्मादीनां पुनरादिमत्त्वादस्ति कालेनावच्छेदः ॥ २६ ॥

---

* क्वचित् सार्वज्ञ्येति पाठः। () अनुमानमात्रस्येति पाठा०।

:: कालानवच्छेदादिति क्वचित्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं प्रभावमुक्त्वा उपासनोपयोगाय वाचकमाह—

तस्य वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥

इत्थमुक्तस्वरूपस्येश्वरस्य वाचकोऽभिधायकः, प्रकर्षेण नूयते स्तूयतेऽ नौति स्तौतीति वा प्रणवः ओङ्कारः, तयोश्च वाच्य-वाचकलक्षणः सम्बन्धो सङ्केतेन प्रकाश्यते, न तु केनचित् क्रियते ; यथा पितापुत्रयो विद्यमा सम्बन्धोऽस्यायं पिता, अस्यायं पुत्र इति केनचित् प्रकाश्यते ॥ २७ ॥

उपासनमाह—

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥

तस्य सार्द्धत्रिमात्रिकस्य* प्रणवस्य, जपो यथावदुच्चारणं, तद्वाच्यस्य चेश्व भावनं पुनः पुनश्चेतसि निवेशनमेकाग्रताया उपायः ; अतः समाधिसिद्धये यो प्रणवो जप्यः, तदर्थ ईश्वरश्च भावनीय इत्युक्तं भवति ॥ २८ ॥

उपासनायाः फलमाह—

ततः प्रत्यक्चेतनाऽधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥२९॥

तस्माज्जपात्तदर्थभावनायाश्च योगिनः प्रत्यक्चेतनाऽधिगमो भ विषयप्रातिकूल्येन स्वान्तःकरणाभिमुखमञ्चति या चेतना दृक्शक्तिः सा प्र चेतना, तदधिगमो ज्ञानं भवतीत्यर्थः ; अन्तराया वक्ष्यमाणाः, तेषाम शक्तिप्रतिबन्धोऽपि भवति ॥ २९ ॥

अथ के अन्तराया इत्याशङ्कायामाह—

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनाल भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥३०

नवैते रजस्तमोबलात् प्रवर्त्तमानाश्चित्तस्य विक्षेपा भवन्ति, तैरेकाग्रता धिभिश्चित्तं विक्षिप्यत इत्यर्थः । तत्र व्याधिर्धातुवैषम्यनिमित्तो ज्वरा स्त्यानमकर्मण्यता चित्तस्य । उभयकोटयालम्बनं ज्ञानं संशयः, योगः सा

* द्र० भूमिका ; त्रिमात्रिकस्य (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वेति। प्रमादोऽनवधानता, समाधिसाधनेष्वौदासीन्यम्। आलस्यं काय-चित्तयोर्गुरुत्वं, योगविषये प्रवृत्त्यभावहेतुः। अविरतिश्चित्तस्य विषयसम्प्रयोगात्मा गर्द्धः। भ्रान्तिदर्शनं शुक्तिकायां रजतवद्विपर्य्ययज्ञानम्। अलब्धभूमिकत्वं कुतश्चिन्निमित्तात् समाधिभूमेरलाभोऽसम्प्राप्तिः। अनवस्थितत्वं लब्धायामपि भूमौ चित्तस्य तत्राप्रतिष्ठा। ते एते समाधेरेकाग्रताया यथायोगं प्रतिपक्षत्वादन्तराया इत्युच्यन्ते ॥ ३० ॥

चित्तविक्षेपकारकानन्यानप्यन्तरायान् प्रतिपादयितुमाह—

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥३१॥

कुतश्चिन्निमित्तादुत्पन्नेषु विक्षेपेषु एते दुःखादयः प्रवर्त्तन्ते। तत्र दुःखं चित्तस्य रजसः परिणामो बाधनालक्षणः, यद्बाधात् प्राणिनः तदुपघाताय प्रवर्त्तन्ते। दौर्मनस्यं बाह्याभ्यन्तरैः कारणैर्मनसो दौःस्थ्यम्। अङ्गमेजयत्वं सर्वाङ्गीणो वेपथुः, आसनमनःस्थैर्य्यस्य बाधकः। प्राणो यद् बाह्यं वायुमाचामति स श्वासः,यत् कौष्ठ्यं वायुं निःश्वसिति स प्रश्वासः। एते विक्षेपैः सह प्रवर्त्तमाना यथोदिताभ्यास-वैराग्याभ्यां निरोद्धव्या इत्येषामुपदेशः ॥३१॥

सोपद्रवविक्षेपप्रतिषेधार्थमुपायान्तरमाह—

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥

तेषां विक्षेपाणां प्रतिषेधार्थमेकस्मिन् कस्मिंश्चिदभिमते तत्त्वेऽभ्यासश्चेतसः पुनः पुनर्निवेशनं कार्य्यः, यद्बलात् प्रत्युदितायामेकाग्रतायां ते विक्षेपाः प्रणाश-मुपयान्ति ॥ ३२ ॥

इदानीं चित्तसंस्कारापादकपरिकर्मकथनमुपायान्तरमाह—

मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षाणां सुख-दुःख-पुण्या-पुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ ३३ ॥

मैत्री सौहार्दम्। करुणा कृपा। मुदिता हर्षः। उपेक्षा औदासीन्यम्। एता यथाक्रमं सुखितेषु दुःखितेषु पुण्यवत्सु अपुण्यवत्सु च विभावयेत्। तथा हि— सुखितेषु साधुषु एषां सुखित्वमिति मैत्रीं कुर्य्यात्, न तु ईर्ष्याम्। दुःखितेषु कथं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नु नामैषां दुःखनिवृत्तिः स्याद् इति कृपामेव कुर्य्यात्, न ताटस्थ्यम् । पुण्यव
पुण्यानुमोदनेन हर्षमेव कुर्य्यात्, न तु किमेते पुण्यवन्त इति विद्वेषम् । अपुण्यव
चौदासीन्यमेव भावयेत्, नानुमोदनं न वा द्वेषम् । सूत्रे सुख-दुखादिशब्दैस्तद्व
प्रतिपादिताः । तदेवं मैत्र्यादिपरिकर्मणा चित्ते प्रसीदति सुखेन समाधेराविर्भा
भवति । परिकर्म चैतत् बाह्यं कर्म, यथा गणिते मिश्रकादिव्यवहारो गणिता
ष्पत्तये सङ्कलितादिकर्मोपकारकत्वेन प्रधानकर्मनिष्पत्तये भवति, एवं द्वेष-रागा
प्रतिपक्षभूतमैत्र्यादिभावनया समुत्पादितप्रसादं चित्तं सम्प्रज्ञातादिसमाधियो
सम्पद्यते । राग-द्वेषावेव मुख्यतया विक्षेपमुत्पादयतः, तौ चेत् समूलमुन्मूलि
स्यातां, तदा प्रसन्नत्वात् मनसो भवत्येकाग्रता ॥ ३३ ॥

उपायान्तरमाह—

प्रच्छर्दन-विधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥

प्रच्छर्दनं कौष्ठयस्य वायोः प्रयत्नविशेषान्मात्राप्रमाणेन वहिर्निःसारण
मात्राप्रमाणेनैव प्राणस्य वायोर्वहिर्गतिविच्छेदो विधारणा, सा च द्वाभ्यां प्रकारा
बाह्यस्याभ्यन्तरापूरणेन* पूरितस्य वा तत्रैव निरोधेन; तदेवं रेचक-पूरक-कुम्
कस्त्रिविधः प्राणायामः चित्तस्य स्थितिमेकाग्रतायां निवध्नाति, सर्वासामिन्द्रि
वृत्तीनां प्राणवृत्तिपूर्वकत्वात्, मनः-प्राणयोश्च स्वव्यापा‡रपरस्परमेकयोगक्षेमत्वा
क्षीयमाणः§ प्राणः समस्तेन्द्रियवृत्तिनिरोधद्वारेण चित्तस्यैकाग्रतायां प्रभवति
समस्तदोषक्षयकारित्वञ्चास्यागमे :: श्रूयते; दोषकृताश्च सर्वा विक्षेपवृत्तयः ; अ
दोषनिर्हरणद्वारेणाप्यस्यैकाग्रतायां सामर्थ्यम् ॥ ३४ ॥

इदानीमुपायान्तरप्रदर्शनोपक्षेपेण सम्प्रज्ञातस्य समाधेः पूर्वाङ्गं कथयति—

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना स्थितिनिबन्धिनी () ॥ ३५

मनस इति वाक्यशेषः । विषयाः गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्दाः, ते वि

* स्यान्तरापूरणेन (पाठा०) । ‡ व्यापारपरस्पर (पाठा०) । § जीयमा
(पाठा०) । :: द्र० भूमिका । () 'मनसः स्थिति' इति प्रायेणान्ये पठन्ति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फलत्वेन यस्याः सा विषयवती प्रवृत्तिर्मनसः स्थैर्य्यं करोति । तथा हि, नासाग्रे चित्तं धारयतो दिव्यगन्धसंविदुपजायते । तादृशस्येव जिह्वाग्रे रससंवित्, ताल्वग्रे रूपसंवित्, जिह्वामध्ये स्पर्शसंवित्, जिह्वामूले शब्दसंवित् । तदेवं तत्तदिन्द्रियद्वारेण तस्मिन् विषये[1] दिव्ये जायमाना संवित् चित्तस्यैकाग्रताया हेतुर्भवति, अस्ति योगस्य फलमिति योगिनः समाश्वासोत्पादनात् ॥३५॥

एवंविधमेवोपायान्तरमाह—

विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

प्रवृत्तिरुत्पन्ना चित्तस्य स्थितिनिबन्धिनीति वाक्यशेषः । ज्योतिःशब्देन सात्त्विकः प्रकाश उच्यते, स प्रशस्तो भूयानतिशयवांश्च विद्यते यस्याः सा ज्योतिष्मती प्रवृत्तिः । विशोका विगतः सुखमयत्वा[2]भ्यासवशाच्छोको रजःपरिणामो यस्याः सा विशोका चेतसः स्थितिनिबन्धिनी । अयमर्थः—हृत्पद्मसम्पुटमध्ये प्रशान्तकल्लोलक्षीरोदधिप्रख्यं चित्तस्य सत्त्वं भावयतः प्रज्ञालोकात् सर्ववृत्तिक्षये चेतसः स्थैर्य्यमुत्पद्यते ॥ ३६ ॥

उपायान्तरप्रदर्शनद्वारेण सम्प्रज्ञातसमाधेर्विषयं दर्शयति—

वीतरागविषयं वा चित्तम्[3] ॥ ३७ ॥

मनसः स्थितिनिबन्धनं भवतीति शेषः । वीतरागः परित्यक्तविषयाभिलाषः, तस्य यच् चित्तं परिहृतक्लेशं तद् आलम्बनीकृतं चेतसः स्थितिहेतुर्भवति ॥३७॥

एवंविधमुपायान्तरमाह--

स्वप्न-निद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ ३८ ॥

प्रत्यस्तमितबाह्येन्द्रियवृत्तेर्मनोमात्रेणैव यत्र भोक्तृत्वमात्मनः स स्वप्नः, निद्रा पूर्वोक्तलक्षणा, तदालम्बनं स्वप्नालम्बनं निद्रालम्बनं वा ज्ञानमालम्ब्यमानं चेतसः स्थितिं करोति ॥३८॥

---

१. तस्मिंस्तस्मिन्दिव्ये विषये (पाठा०)। २. सुखमयसत्त्वाभ्यास (पाठा०) ।
३. विषाद्वेयति क्वचित् पठ्यते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नानारुचित्वात् प्राणिनां यस्मिन् कस्मिंश्चिद्वस्तुनि योगिनः श्रद्धा भवे तस्य ध्यानेनापीष्टसिद्धिरिति प्रतिपादयितुमाह—

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥

यथाऽभिप्रेते वस्तुनि बाह्ये चन्द्रादावभ्यन्तरे नाडीचक्रादौ वा भाव्यमाने चे स्थिरीभवति ॥३९॥

एवमुपायान् प्रदर्श्य फलदर्शनायाह—

परमाणु-परममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥

एभिरुपायैश्चित्तस्य स्थैर्य्यं भावयतो योगिनः सूक्ष्मविषयभावनाद्वारेण परम ण्वन्तो वशीकारोऽप्रतिघातरूपो जायते, न क्वचित् परमाणुपर्यन्ते[1] सूक्ष्मे वि ऽस्य मनः प्रतिहन्यते इत्यर्थः। एवं स्थूलमाकाशादिपरममहत्त्वपर्य्यन्तं भाव न क्वचिच्चेतसः प्रतिघात उत्पद्यते, सर्वत्र स्वातन्त्र्यं भवतीत्यर्थः ॥ ४० ॥

एवमेभिरुपायैः संस्कृतस्य चेतसः कीदृग्रूपं भवतीत्याह—

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्येषु
तत्स्थ-तदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

क्षीणा वृत्तयो यस्य स क्षीणवृत्तिः तस्य ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्येषु आत्मेन्द्रिया विषयेषु तत्स्थ-तदञ्जनता समापत्तिर्भवति। तत्स्थत्वं तत्र एकाग्रता, तदञ्जन तन्मयत्वं, क्षीणभूते चित्ते विषयस्य भाव्यमानस्यैवोत्कर्षः, तथाविधा समाप तद्रूपः परिणामो भवतीत्यर्थः। दृष्टान्तमाह, अभिजातस्येव मणेः—यथा अभिजात निर्मलस्फटिकमणेस्तत्तादुपाधिवशात् तत्तद्रूपापत्तिः, एवं निर्मलस्य चित्तस्य तत्त वनीयवस्तूपरागात्तत्तद्रूपापत्तिः। यद्यपि ग्रहीतृ-ग्रहण-ग्राह्येषु इत्युक्तं, तथा भूमिकाक्रमवशात् ग्राह्य-ग्रहण-ग्रहीतृषु इति बोद्धव्यम्; यतः प्रथमं ग्राह्यनिष्ठ समाधिः, ततो ग्रहणनिष्ठः, ततोऽस्मिता[2]मात्ररूपो ग्रहीतृनिष्ठः, केवलस्य पुरु ग्रहीतुर्भाव्यत्वासम्भवात्। ततश्च स्थूल-सूक्ष्मग्राह्योपरक्तं चित्तं तत्र समाप भवति, एवं ग्रहणे ग्रहीतरि च समापन्नं बोद्धव्यम् ॥४१॥

---

१. परमाण्वन्ते (पाठा०)। २. अस्मितारूपः (पाठा०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इदानीमुक्ताया एव समापत्तेश्चातुर्विध्यमाह—

शब्दार्थ-ज्ञानविकल्पैः सङ्कीर्णा सवितर्का समापत्तिः() ॥४२॥

श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यः स्फोटरूपो वा शब्दः, अर्थो जात्यादिः, ज्ञानं सत्त्वप्रधाना बुद्धिवृत्तिः, विकल्प उक्तलक्षणः, तैः सङ्कीर्णा ; यस्याम् एते शब्दादयस्त्रयः परस्पराध्यासेन विकल्परूपेण []प्रतिभासन्ते गौरिति शब्दो गौरित्यर्थो गौरिति ज्ञानम् इत्यनेनाकारेण सा ꙮसवितर्का समापत्तिरुच्यते ॥४२॥

उक्तलक्षणविपरीतां निर्वितर्कामाह—

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवाऽर्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥४३॥

शब्दार्थस्मृतिप्रविलये सति प्रत्युदितस्पष्टग्राह्याकारप्रतिभासित‡तया न्यग्भूतज्ञानांशत्वेन स्वरूपशून्येव निर्वितर्का समापत्तिः ॥४३॥

भेदान्तरं प्रतिपादयितुमाह—

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥४४॥

एतयैव सवितर्कया निर्वितर्कया च समापत्त्या सविचारा निर्विचारा च व्याख्याता ; कीदृशी ? सूक्ष्मविषया—सूक्ष्मः तन्मात्रेन्द्रियादिर्विषयो यस्याः सा तथोक्ता । एतेन पूर्वस्याः स्थूलविषयत्वं प्रतिपादितं भवति । सा हि महाभूतेन्द्रियालम्बना†, शब्दार्थविषयत्वेन शब्दार्थविकल्पसहितत्वेन देशकालधर्माद्यवच्छिन्नः सूक्ष्मोऽर्थः प्रतिभाति यस्यां सा सविचारा । देशकालधर्मादिरहितो ०धर्मिमात्रतया सूक्ष्मार्थस्तन्मात्रेन्द्रियरूपः प्रतिभाति यस्यां सा निर्विचारा ॥४४॥

अस्या एव सूक्ष्मविषयायाः किम्पर्य्यन्तः सूक्ष्मविषय इत्याह—

सूक्ष्मविषयत्वञ्चालिङ्गपर्य्यवसानम् ॥ ४५ ॥

सविचार-निर्विचारयोः समापत्त्योर्यत् सूक्ष्मविषयत्वमुक्तं तदलिङ्गपर्य्यवसानं

() सूत्रपाठविचारो भूमिकायां द्र० । [] विकल्परूपेणेति क्वचिन्न । ꙮ या ति क्वचित् । ‡प्रतिभासितया । †महाभूतालम्बना (पाठा०) । ० धर्ममात्रतया ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न क्वचिल्लीयते न वा किञ्चित् लिङ्गति गमयतीत्यलिङ्गं प्रधानं, तत्पर्यन्तं सूक्ष्मविषयत्वम्। तथा हि—गुणानां परिणामे चत्वारि पर्वाणि—विशिष्टलिङ्गं, अविशिष्टलिङ्गं, लिङ्गमात्रम्, अलिङ्गं चेति। विशिष्टलिङ्गं भूतेन्द्रियाणि*, अविशिष्टलिङ्गं तन्मात्रान्तःकरणानि, लिङ्गमात्रं बुद्धिः, अलिङ्गं प्रधानमिति नातः सूक्ष्ममस्तीत्युक्तं भवति ॥ ४५ ॥

एतासां समापत्तीनां प्रकृते प्रयोजनमाह—

ता एव सवीजः समाधिः ॥ ४६ ॥

ता एव उक्तलक्षणाः समापत्तयः, सवीजः सह वीजेनालम्बनेन वर्त्तत इति सवीजः सम्प्रज्ञातः समाधिरित्युच्यते, सर्वासां सालम्बनत्वात् ॥ ४६ ॥

अथेतरासां समापत्तीनां निर्विचारफलत्वाद् निर्विचारायाः फलमाह—

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥४७॥

निर्विचारत्वं व्याख्यातं (१।४४), वैशारद्यं नैर्मल्यं, सवितर्कां स्थूलविषयामपेक्ष्य निर्वितर्कायाः प्राधान्यं, ततोऽपि सूक्ष्मविषयायाः सविचारायाः, ततोऽपि निर्विचारायाः, तस्यास्तु निर्विकल्परूपायाः प्रकृष्टाभ्यासवशाद्वैशारद्ये नैर्मल्ये सत्यध्यात्मप्रसादः समुपजायते। चित्तं क्लेशवासनारहितं स्थितिप्रवाहयोग्यं भवति। एतदेव चित्तस्य वैशारद्यं यत् स्थितौ दाढर्चम् ॥ ४७ ॥

तस्मिन् सति किं भवतीत्याह—

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ॥ ४८ ॥

ऋतं सत्यं विभर्त्ति कदाचिदपि न विपर्ययेणाच्छाद्यते सा ऋतम्भरा प्रज्ञा तस्मिन् भवतीत्यर्थः। तस्माच्च प्रज्ञालोकात् सर्वं यथावत् पश्यन् योगी प्रकृष्टं योगं प्राप्नोति ॥ ४८ ॥

---

* भूतानि (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्याः प्रज्ञान्तराद्वैलक्षण्यमाह—

*श्रुतानुमान-प्रज्ञाभ्यां सामान्यविषया† विशेषार्थत्वात् ॥४९॥

()श्रुतमागमज्ञानम्, अनुमानमुक्तलक्षणं (१।७) ; ताभ्यां या जायते प्रज्ञा सा सामान्यविषया । न हि शब्दलिङ्गयोरिन्द्रियवद्विशेषप्रतिपत्तौ सामर्थ्यम्, इयं पुनर्निर्विचारवैशारद्यसमुद्भवा प्रज्ञा ताभ्यां विलक्षणा, विशेषविषयत्वात् ; अस्यां हि प्रज्ञायां सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्टानामपि विशेषः स्फुटेनैव रूपेण भासते ; अतस्तस्यामेव योगिना परः प्रयत्नः कर्त्तव्य इत्युपदिष्टं भवति ॥ ४९ ॥

अस्याः प्रज्ञायाः फलमाह—

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी※ ॥५०॥

तया प्रज्ञया जनितो यः संस्कारः सोऽन्यान् (-)संस्कारान् व्युत्थानजान् समाधिजांश्च संस्कारान् प्रतिबध्नाति स्वकार्यकरणाक्षमान् करोतीत्यर्थः ; यतस्तत्त्वरूपतयाऽनया जनिताः संस्कारा बलवत्त्वादतत्त्वरूपप्रज्ञाजनितान् संस्कारान् बाधितुं शक्नुवन्ति ; अतस्तामेव प्रज्ञामभ्यसेदित्युक्तं भवति ॥ ५० ॥

एवं सम्प्रज्ञातसमाधिमभिधायासम्प्रज्ञातं वक्तुमाह—

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥५१॥

तस्यापि सम्प्रज्ञातस्य निरोधे विलये सति सर्वासां चित्तवृत्तीनां कारणे विलयाद् या या ०संस्कारमात्रादृत्तिरुदेति, तस्यां 'नेति नेति' केवलं पर्युदसनान्निर्बीजः समाधिर्भवति, []यस्मिन् सति पुरुषः स्वरूपनिष्ठः शुद्धो भवति ॥ ५१ ॥

तदत्राधिकृतस्य योगस्य लक्षणं चित्तवृत्तिनिरोधपदानां व्याख्यानम्, अभ्यासवैराग्यलक्षणस्योपायद्वयस्य स्वरूपं भेदञ्चाभिधाय, सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातभेदेन योगस्य मुख्यामुख्यभेदमुक्त्वा, योगाभ्यासप्रदर्शनपूर्वकं विस्तारेणोपायान् प्रदर्श्यं

* श्रौतानु (पाठा०) । † पाठविचारो द्रष्टव्यो भूमिकायाम् । () श्रौतम् (पाठा०) । ※ विरोधीति क्वचित् पठ्यते । (-) व्युत्थानजानित्यधिकं क्वचित् । ० प्रविलयान्न (पाठा०) । []आविर्भवति (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुगमोपायप्रदर्शनपरतया ईश्वरस्य स्वरूप-प्रमाण-प्रभाववाचकोपासनां तत्फलानि च निर्णीय, चित्तविक्षेपान् तत्तत्सहभुवश्च दुःखादीन् विस्तरेण तत्प्रतिषेधोपायानेकतत्त्वाभ्यास-मैत्र्यादिप्राणायामादीन् सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातपूर्वाः भूतविषयवती प्रवृत्तिरित्यादीनाख्यायोपसंहारद्वारेण च समापत्ति लक्षणफलसहि(स्वस्वविषयसहितां :-: चोक्त्वा सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातयोरुपसंहारमभिधाय सबीजः निर्बीजसमाधिरभिहित इति व्याकृतो योगपादः†।

इति धारेश्वर[] भोजदेवविरचितायां राजमार्त्तण्डाभिधायां पातञ्जल समाधिपादः(-) ॥ १ ॥

अथ साधनपादः

ते ते दुष्प्रापयोगर्द्धि-सिद्धयो येन दर्शिताः ।
उपायाः स जगन्नाथस्त्र्यक्षोऽस्तु प्रार्थिताप्तये ॥

तदेवं प्रथमे पादे समाहितचित्तस्य सोपायं योगम् अभिधाय व्युत्थितचित्त कथमुपायाभ्यासपूर्वको योगः ०स्वास्थ्यमुपयातीति तत्साधनानुष्ठानप्रतिपा क्रियायोगमाह—

तपः-स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥१॥

तपः शास्त्रान्तरोपदिष्टं (:)चान्द्रायणादि,स्वाध्यायः प्रणवपूर्वाणां मन्त्राणां ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां तस्मिन् परमगुरौ फलनिरपेक्षतया समर्पणम्। क्रियायोग इत्युच्यते ॥ १ ॥

---

* पासनक्रमं (पाठा०)। () समापत्तिलक्षणफल (पाठा०); सलक्षणाः सफलाः (पाठा०)। :-: सहिताश्चोक्त्वा (पाठा०)। † सदित्यधिक क्वचित्। (-) योगाख्यः प्रथमः पाद इति क्वचित। [] (पाठा०)। ० सात्म्यम् (पाठा०)। (:) कृच्छ्रचान्द्रायणादि (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स किमर्थमित्याह—

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥२॥

क्लेशा वक्ष्यमाणाः, तेषां तनूकरणं स्वकार्यकरणप्रतिबन्धः, समाधिरुक्तलक्षणः (१।१८), तस्य भावना चेतसि पुनः पुनर्निवेशनं, सा अर्थः प्रयोजनं यस्य स तथोक्तः। एतदुक्तं भवति—एते तपःप्रभृतयोऽभ्यस्यमानाश्चित्तगतान् अविद्यादीन् क्लेशान् शिथिलीकुर्वन्तः समाधेरुपकारकतां भजन्ते; तस्मात् प्रथमं †क्रियायोगविधानपरेण योगिना भवितव्यमित्युपदिष्टम् ॥ २ ॥

क्लेशतनूकरणार्थ इत्युक्तं, तत्र के क्लेशा इत्याह—

अविद्याऽस्मिता-राग-द्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः* ॥३॥

अविद्यादयो वक्ष्यमाणलक्षणाः पञ्च, ते बाधनालक्षणं परितापमुपजनयन्तः क्लेशशब्दवाच्या भवन्ति; ते हि चेतसि प्रवर्त्तमानाः संस्कारलक्षणं‡ गुणपरिणामं द्रढयन्ति ॥ ३ ॥

सत्यपि सर्वेषां तुल्यक्लेशत्वे मूलभूतत्वादविद्यायाः प्राधान्यं प्रतिपादयितुमाह—

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्त-तनु-विच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥

अविद्या मोहः, अनात्मन्यात्माभिमान इति यावत्, सा क्षेत्रं प्रसवभूमिः उत्तरेषाम् अस्मितादीनां प्रत्येकं प्रसुप्त-तन्वादिभेदेन चतुर्विधानाम्; अतो यत्रा[वि]द्या विपर्य्ययज्ञानरूपा शिथिलीभवति, तत्र क्लेशानाम् अस्मितादीनां नोद्भवो [दृ]श्यते, विपर्य्ययज्ञानसद्भावे च तेषामुद्भवदर्शनात् स्थितमेव मूलत्वमविद्यायाः। [प्र]सुप्त-तनु-विच्छिन्नोदाराणामिति। तत्र ये क्लेशाश्चित्तभूमौ स्थिताः प्रबोधकाभावे [स्]वकार्य्यं नारभन्ते, ते प्रसुप्ता इत्युच्यन्ते। यथा बालावस्थायां बालस्य हि [वा]सनारूपाः स्थिताः अपि क्लेशाः प्रबोधकसहकार्य्यभावे नाभिव्यज्यन्ते। तनवो ये [स्]वस्वप्रतिपक्षभावनया शिथिलीकृतकार्य्यसम्पादनशक्तयो वासनाऽवशेषतया

† प्रथमतः क्रियायोगावधानपरेण (पाठा०)। *पञ्च क्लेशाः (पाठा०)।
‡ संसारलक्षणं (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चेतस्यवस्थिताः प्रभूतां सामग्रीमन्तरेण स्वकार्य्यमारब्धुमक्षमाः, यथाभ्
वतो योगिनः । ते विच्छिन्ना ये न केनचिद् बलवता क्लेशेनाभिभूतशक्तयस्तिष्ठ
यथा द्वेषावस्थायां रागः, रागावस्थायां वा द्वेषः,न ह्यनयोः परस्परविरुद्धयोयु
सम्भवोऽस्ति । उदारा ये प्राप्तसहकारिसन्निधयः स्वं स्वं कार्य्यमभिनिर्वर्त्तय
यथा सदैव योगपरिपन्थिनः । व्युत्थानदशायाम् एषां प्रत्येकं चतुर्विधाना
मूलभूतत्वेन स्थिताऽप्यविद्या अन्वयित्वेन प्रतीयते ; न हि क्वचिदपि क्लेश
विपर्य्ययान्वयनिरपेक्षाणां स्वरूपमुपलभ्यते ; तस्मात्* मिथ्याज्ञानरूपाया
अविद्यायां सम्यग्ज्ञानेन निवर्त्तितायां दग्धबीजकल्पानाम् एषां न क्वचित् प्र
ऽस्ति ; अतोऽविद्यानिमित्तत्वमविद्यान्वयश्चैतेषां निश्चीयते ; अतः सर्व
अविद्याव्यपदेशभाजः ; सर्वेषां च क्लेशानां चित्तविक्षेपकारित्वाद् योगिना प्रथम
तदुच्छेदे यत्नः कार्य्य इति ॥ ४ ॥

अविद्यालक्षणमाह—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥५॥

अतस्मिंस्तत्प्रतिभासोऽविद्येत्यविद्यायाः सामान्यलक्षणं, तस्या एव भेद
पादनम्—अनित्येषु घटादिषु नित्यत्वाभिमानोऽविद्येत्युच्यते । एवमशुचिषु काया
शुचित्वाभिमानः, दुःखेषु विषयेषु सुखाभिमानः, अनात्मशरीरे आत्माभिमा
एतेनापुण्ये पुण्यभ्रमोऽनर्थेऽर्थभ्रमो व्याख्यातः ॥ ५ ॥

अस्मितां लक्षयितुमाह—

दृग्-दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥

दृक्शक्तिः पुरुषः, दर्शनशक्तिः रजस्तमोभ्यामनभिभूतः सात्त्विकः परिणा
ऽन्तःकरणरूपः, अनयो र्भोक्तृ-भोग्यत्वेन अजड-जडत्वेनात्यन्तभिन्नरूपयोरेकता
नोऽस्मितेत्युच्यते । यथा †प्रकृतिर्वस्तुतः कर्त्तृत्वभोक्तृत्वरहितापि भोक्ताऽहमित्य
मन्यते, सोऽयमस्मिताख्यो विपर्यासः क्लेशः ॥ ६ ॥

---

* तस्यां च (पाठा०) । () मिथ्यारूपायाम् (पाठा०) ।

† प्रकृतिवता कर्तृत्वरहितेनापि (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रागस्य लक्षणमाह—

सुखानुशयी रागः ॥ ७ ॥

सुखमनुशेत इति सुखानुशयी, सुखज्ञस्य सुखानुस्मृतिपूर्वकः सुखसाधनेषु तृष्णारूपो गर्द्धो रागसंज्ञकः क्लेशः ॥ ७ ॥

द्वेषलक्षणमाह—

दुःखानुशयी द्वेषः ॥८॥

दुःखमुक्तलक्षणं, तदभिज्ञस्य तदनुस्मृतिपूर्वकं तत्साधनेषु अनभिलपतो* योऽयं निन्दात्मकः क्रोधः स द्वेषलक्षणः क्लेशः ॥ ८ ॥

अभिनिवेशस्य लक्षणमाह----

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः† ॥ ९ ॥

पूर्वजन्मानुभूतमरणदुःखानुभववासनाबलाद्भयरूपः समुपजायमानः शरीर-विषयादिभिर्मम वियोगो मा भूदिति अन्वहमनुबन्धरूपः सर्वस्यैव आ-कृमेर्ब्रह्म-पर्य्यन्तं निमित्तमन्तरेण प्रवर्त्तमानोऽभिनिवेशाख्यः क्लेशः ॥९॥

तदेवं व्युत्थानस्य क्लेशात्मकत्वादेकाग्रताऽभ्यासकामेन प्रथमं क्लेशाः परि-हर्त्तव्याः ; न चाज्ञातानां तेषां परिहारः कर्त्तुं शक्य इति तज्ज्ञानाय तेषाम् ❀उद्देशं लक्षणं क्षेत्रं विभागञ्चाभिधाय स्थूल-सूक्ष्मभेदभिन्नानां तेषां प्रहाणोपायविभागमाह—

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥

ते सूक्ष्माः क्लेशाः, ये वासनारूपेणैव स्थिताः स्ववृत्तिरूपं परिणाममारभन्ते, ते प्रतिप्रसवेन प्रतिलोमपरिणामेन हेयास्त्यक्तव्याः ; स्वकारणेऽस्मितायां कृतार्थं सवासनं चित्तं यदा प्रविष्टं भवति, तदा कुतस्तेषां निर्मूलानां सम्भवः ? ॥१०॥

स्थूलानां हानोपायमाह—

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥

तेषां क्लेशानामारब्धकार्य्याणां याः सुख-दुःख-मोहात्मका वृत्तयः, ता ध्यानहेयाः,

---

* अनभिलष्यता योऽयं निरासो (पाठा०)। † सूत्रपाठविचारो भूमिकायां द्र०। ❀ उपदेशं (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ध्यानेनैव चित्तैकाग्रतालक्षणेन हातव्या इत्यर्थः। चित्तपरिकर्माभ्यासमात्रेणैव स्थू त्वात्तासां निवृत्तिर्भवति ; यथा वस्त्रादौ स्थूलो मलः प्रक्षालनमात्रेणैव निवर्त ()यस्तत्र सूक्ष्मांशः स तैस्तैरुपायैरुत्तापनप्रभृतिभिरेव† निवर्त्तयितुं शक्यते ॥११॥

एवं क्लेशानां तत्त्वमभिधाय कर्माशयस्य तदभिधातुमाह—

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥ १२ ॥

कर्माशय इत्यनेन स्वरूपं तस्याभिहितम् ; अतो वासनारूपाण्येव कर्मा क्लेशमूल इत्यनेन कारणमभिहितं, यतः कर्मणां शुभाशुभानां क्लेशा एव निमित्त दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय इत्यनेन फलमुक्तम्। अस्मिन्नेव जन्मनि अनुभवनीयो दृष्ट वेदनीयः ; जन्मान्तरानुभवनीयोऽदृष्टजन्मवेदनीयः ; तथा हि—कानिचित् पुण्य देवताराधनादीनि तीव्रसंवेगेन कृतानि इहैव जन्मनि जात्यायुर्भोगलक्षणं प्रयच्छन्ति। यथा—नन्दीश्वरस्य भगवन्महेश्वराराधनवलादिहैव जन्मनि जात्या विशिष्टाः प्रादुर्भूताः। एवमन्येषां विश्वामित्रादीनां तपःप्रभावाज् जात्यायु केषाञ्चिज्जातिरेव ; तथा तीव्रसंवेगेन दुष्टकर्मकृतां नहुषादीनां जात्यन्तर परिणामः ; उर्वश्याश्च कार्त्तिकेयवने लतारूपतया० ; एवं व्यस्तसमस्तत्वेन य योग्यं योज्यमिति ॥ १२ ॥

इदानीं कर्माशयस्य स्वभेदभिन्नस्य* फलमाह—

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥१३ ॥

मूलमुक्तलक्षणाः क्लेशाः, तेष्वनभिभूतेषु सत्सु कर्मणां कुशलाकुशलरू विपाकः फलं जात्यायुर्भोगा भवन्ति। जातिर्मनुष्यादिः,आयुश्चिरकालम् एकश सम्बन्धः, भोगा विषया इन्द्रियाणि सुखसंविद् दुःखसंविच्च, सुख-दुःखादीनि करणभाववोधनव्युत्पत्त्या भोगशब्दस्य। ❀इदमत्र तात्पर्य्यम्—चित्तभूमौ अनादि

() यस्तु तत्र सूक्ष्मः (पाठा०)। † अनल प्रभृतिभिः (पाठा०)। ०दृष्टान्त भूमिका द्र०। * स्वभेदभिन्नं फलमाह (पाठा०)। ❀ भोगशब्दस्य। इ तात्पर्यम् (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सञ्चिताः कर्मवासना यथा यथा पाकमुपयान्ति, तथा तथा गुणप्रधानभावेन स्थिता जात्यायुर्भोगलक्षणं स्वकार्य्यमारभन्ते ॥ १३ ॥

उक्तानां कर्मफलत्वेन जात्यादीनां स्वकारणकर्मानुसारिणां† कार्य्यकर्त्तृत्वमाह—

ते ह्लाद-परितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ १४ ॥

ह्लादः सुखं, परितापो दुःखं, तौ फलं येषां ते तथोक्ताः, पुण्यं कुशलं कर्म, तद्विपरीतमपुण्यं, ते कर्मणी कारणं येषां तेषां भावस्तस्मात्। एतदुक्तं भवति— पुण्यकर्मारब्धा जात्यायुर्भोगा ह्लादफलाः, अपुण्यकर्मारब्धास्तु परितापफलाः, एतच्च प्राणिमात्रापेक्षतया‡ द्वैविध्यम् ॥ १४ ॥

योगिनस्तत् सर्वं दुःखमित्याह—

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥१५॥

विवेकिनः परिज्ञातक्लेशादिविवेकस्य दृश्यमात्रं सकलमेव भोगसाधनं सविषं स्वाद्वन्नमिव दुःखमेव प्रतिकूलवेदनीयमेवेत्यर्थः ; यस्मादत्यन्ताभिजातो* योगी दुःखलेशेनाप्युद्विजते ; यथा—अक्षिपात्रमूर्णातन्तुस्पर्शमात्रेणैव‡ महतीं पीडामनुभवति, नेतरदङ्गं, तथा विवेकी स्वल्पदुःखानुबन्धेनापि उद्विजते। कथमित्याह—परिणाम-ताप-संस्कारदुःखैर्विषयाणामुपभुज्यमानानां यथायथं गर्द्धाभिवृद्धेस्तदप्राप्तिकृतस्य सुख-दुःखस्य अपरिहार्य्यतया दुःखान्तरसाधनत्वाद् नास्त्येव सुखरूपतेति परिणामदुःखत्वम्। उपगृह्यमाणेषु सुखसाधनेषु तत्प्रतिपन्थिनं प्रति द्वेषस्य सर्वदैवावस्थितत्वात् सुखानुभवकालेऽपि तापदुःखं दुष्परिहरमिति तापदुःखता। संस्कारदुःखन्तु स्वाभिमतानभिमतविषयसन्निधाने सुखसंविद् दुःखसंविच्चोपजायमाना तथाविधमेव स्वक्षेत्रे संस्कारमारभते, संस्काराच्च पुनस्तथा-

---

† कर्मानुसारेण (पाठा०)। ‡ प्राणिमात्रापेक्षया (पाठा०)।
*जात्यः (पाठा०)। ‡ पात्रमणुतन्तुस्पर्श (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विघ्नसंविदनुभव इत्यपरिमितसंस्कारोत्पत्तिद्वारेण सर्वस्यैव †दुःखानुवेधाद् दुःखत्वम्। ()एवमुक्तं भवति—क्लेशकर्माशयविपाकसंस्कारानुच्छेदात् सर्वस्यैव दुःखत्वम् गुणवृत्तिविरोधाच्चेति—गुणानां सत्त्वरजस्तमसां या वृत्तयः सुख-दुःख-मोहरूपा परस्परमभिभाव्याभिभावकत्वेन विरुद्धा जायन्ते, तासां सर्वत्रैव दुःखानुवेधाद् दुःख-त्वम् । ०एतदुक्तं भवति—ऐकान्तिकीमात्यन्तिकीञ्च दुःखनिवृत्तिमिच्छतो विवेकि उक्तरूपकारणचतुष्टयाः सर्वे विषया दुःखरूपतया प्रतिभान्ति ; तस्माच्च सर्वकर्मविपाको दुःखरूप एवेत्युक्तं भवति ॥ १५ ॥

तदेवमुक्तस्य क्लेशकर्माशयविपाकराशेरविद्याप्रभवत्वाद् अविद्यायाश्च मिथ्याज्ञानरूपतया सम्यग्ज्ञानोच्छेद्यत्वात् सम्यग्ज्ञानस्य च समाधनहेयोपादेयाव-धारणरूपत्वात् तदभिधानमाह—

हेयं दुःखमनागतम् ।[1] १६ ॥

भूतस्यातिक्रान्तत्वात्, अनुभूयमानस्य त्यक्तुमशक्यत्वादनागतमेव संसारदुःखं हातव्यमित्युक्तं भवति ॥ १६ ॥

हेयहेतुमाह—

द्रष्टृ-दृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

द्रष्टा चिद्रूपः पुरुषः, दृश्यं बुद्धिसत्त्वं, तयोरविवेकख्यातिपूर्वको योऽसौ संयोगो भोक्तृ-भोग्यत्वेन सन्निधानं, हेयस्य दुःखस्य गुणपरिणामरूपस्य संसारस्य हेतुः कारणं, तन्निवृत्त्या संसारनिवृत्तिर्भवतीत्यर्थः ॥ १७ ॥

द्रष्टृ-दृश्ययोः संयोग इत्युक्तं, तत्र दृश्यस्य स्वरूपं कार्य्यं प्रयोजनञ्चाह—

प्रकाश-क्रिया-स्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं
भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥

प्रकाशः सत्त्वस्य धर्मः, क्रिया प्रवृत्तिरूपा रजसः, स्थितिर्नियमरूपा तमसः

† संसारानुच्छेदात् सर्वस्यैव दुःखत्वम् (पाठा०)। () इदं वाक्यं क्वचित् पठ्यते । ० एवमुक्तं भवति (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ताः प्रकाश-क्रिया-स्थितयः शीलं स्वाभाविकं रूपं यस्य तत्तथाविधमिति स्वरूपमस्य निर्दिष्टम् । भूतेन्द्रियात्मकमिति—भूतानि स्थूलसूक्ष्मभेदेन द्विविधानि, पृथिव्यादीनि गन्धतन्मात्रादीनि च, इन्द्रियाणि बुद्धीन्द्रिय-कर्मेन्द्रियान्तःकरणभेदेन त्रिविधानि, उभयमेतद् ग्राह्य-ग्रहणरूपम्, आत्मा स्वरूपाभिन्नः परिणामो यस्य तत्तथाविधमित्यनेनास्य कार्य्यमुक्तम् । भोगः कथितलक्षणः, अपवर्गो विवेकख्यातिपूर्विका संसारनिवृत्तिः, तौ भोगापवर्गौ अर्थः प्रयोजनं यस्य तत्तथाविधं दृश्यमित्यर्थः ॥१८॥

तस्य दृश्यस्य नानावस्थारूपपरिणामात्मकस्य हेयत्वेन ज्ञातव्यत्वात् तदवस्थाः कथयितुमाह—

विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥ १९ ॥

गुणानां पर्वाण्यवस्थाविशेषाश्चत्वारो ज्ञातव्या इत्युपदिष्टं भवति । तत्र विशेषा महाभूतेन्द्रियाणि, अविशेषास्तन्मात्रान्तःकरणानि, लिङ्गमात्रं बुद्धिः, अलिङ्गमव्यक्तमित्युक्तं, सर्वत्र त्रिगुणरूपस्याव्यक्तस्यान्वयित्वेन प्रत्यभिज्ञानादवश्यं ज्ञातव्यत्वेन योगकाले चत्वारि पर्वाणि निर्दिष्टानि ॥ १९ ॥

एवं हेयत्वेन प्रथमं दृश्यस्य ज्ञातव्यत्वेन तदवस्थासहितं ()व्याख्याय उपादेयं द्रष्टारं *वक्तुमाह—

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥२० ॥

द्रष्टा पुरुषः, दृशिमात्रश्चेतनामात्रं, मात्रग्रहणं धर्मधर्मिनिरासार्थम् । केचिद्धि चेतनामात्मनो धर्ममिच्छन्ति । स शुद्धोऽपि परिणामित्वाद्यभावेन स्वप्रतिष्ठोऽपि,† प्रत्ययानुपश्यः प्रत्यया विषयोपरक्तानि विज्ञानानि, तानि अनु अव्यवधानेन प्रतिसंक्रमाद्यभावेन पश्यति । एतदुक्तं भवति—जातविषयोपरागायामेव बुद्धौ सन्निधिमात्रेणैव पुरुषस्य द्रष्टृत्वमिति ॥ २० ॥

() हेयत्वेन दृश्यस्य प्रथमं ज्ञातव्यत्वात् (पाठा०) । * 'व्याकर्तुं व्याख्यातुम् (पाठा०) † सुप्रतिष्ठः (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स एव भोक्तेत्याह—

तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ॥ २१ ॥

दृश्यस्य प्रागुक्तलक्षणस्य य आत्मा() यत् स्वरूपं तदर्थ एव ; तस्य पुरुषार्थ-भोक्तृत्वसम्पादनं नाम स्वार्थपरिहारेण प्रयोजनं, न हि प्रधानं प्रवर्त्तमानम् आत्मनः किञ्चित् प्रयोजनमपेक्ष्य प्रवर्त्तते, किन्तु पुरुषस्य भोक्तृत्वं सम्पाद-यितुमिति॥ २१ ॥

यद्येवं पुरुषस्य भोगसम्पादनमेव प्रयोजनं, तदा सम्पादिते तस्मिन् तद् निष्प्रयोजनं विरतव्यापारं स्यात्, तस्मिंश्च परिणामशून्ये शुद्धत्वात् सर्वे द्रष्टारो बन्धरहिताः स्युः, ततश्च संसारोच्छेद इत्याशङ्क्याह—

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥ २२ ॥

यद्यपि विवेकख्यातिपर्य्यन्ताद् भोगसम्पादनात् कमपि कृतार्थं पुरुषं प्रति तन्नष्टं विरतव्यापारं, तथापि सर्वपुरुषासाधारणत्वाद् अन्यान् प्रति अनष्टव्यापारमवतिष्ठते, ततः* प्रधानस्य सकलभोक्तृसाधारणत्वाद् न कदाचिदपि† विनाशः। एकस्य मुक्तौ वा न सर्वमुक्तिप्रसङ्ग इत्युक्तं भवति ॥ २२ ॥

दृश्य-द्रष्टारौ व्याख्याय संयोगं व्याख्यातुमाह—

स्व-स्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥ २३ ॥

कार्य्यद्वारेणास्य लक्षणं करोति। स्वशक्तिर्दृश्यस्य स्वभावः, स्वामिशक्तिर्द्रष्टुः स्वरूपं, तयोर्द्वयोरपि संवेद्य-संवेदकत्वेन व्यवस्थितयोर्या स्वरूपोपलब्धिस्तस्याः कारणं यः, स संयोगः ; स च सहजो भोग्य-भोक्तृभावस्वरूपानन्यः[] न हि तयोर्नित्ययोर्व्यापकयोः स्वरूपादतिरिक्तः कश्चित् संयोगः, यदेव भोग्यस्य भोग्यत्वं भोक्तुश्च भोक्तृत्वमनादिसिद्धं स एव संयोगः ॥ २३ ॥

() आत्मा यत् स्वरूपं; स तदर्थस्तस्य पुरुषस्य (पाठा०)। भोगं सम्पादयामि (पाठा०)। * अतः। † नापि विनाशः। [] स्वरूपात् नान्यः (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्यापि कारणमाह—

तस्य हेतुरविद्या ॥ २४ ॥

या पूर्वं विपर्य्यासात्मिका मोहरूपाऽविद्या व्याख्याता (२।४–५), सा तस्य विवेकख्यातिरूपस्य संयोगस्य कारणम् ॥ २४ ॥

*हेयं हानिक्रिया-कर्मोच्यते; किं पुनस्तद्धानम् इत्याह—

तदभावे❀ संयोगाभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम् ॥ २५ ॥

तस्या अविद्यायाः स्वरूपविरुद्धेन सम्यग्ज्ञानेन उन्मूलिताया योऽयमभावस्तस्मिन् सति तस्कार्य्यस्य संयोगस्याप्यभावः, तत् हानमित्युच्यते। अयमर्थः,—नैतस्य() अमूर्त्तवस्तुनः विभागो युज्यते, किन्तु जातायां विवेकख्यातौ अविवेकनिमित्तः संयोगः स्वयमेव निवर्त्तत इति तस्य हानं, यदेव च संयोगस्य हानं तदेव नित्यं केवलस्यापि पुरुषस्य कैवल्यं व्यपदिश्यते। तदेवं दृश्यसंयोगस्य स्वरूपं कारणं कार्य्यञ्चाभिहितम् ॥ २५ ॥

अथ हानोपायकथनद्वारेण उपादेयकारणमाह—

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २६ ॥

अन्ये गुणाः, अन्यः पुरुष इत्येवंविधस्य विवेकस्य या ख्यातिः साऽस्य हानस्य दृश्यदुःखपरित्यागस्योपायः† कारणं, कीदृशी ? अविप्लवा—न विद्यते विप्लवो विच्छेदोऽन्तराऽन्तराऽभ्युत्थानरूपो‡ यस्याः स अविप्लवा। इदमत्र तात्पर्य्यम्—प्रतिपक्षभावनाबलादविद्याप्रलये निवृत्तकर्त्तृत्व-भोक्तृत्वाभिमानाया रजस्तमोमलानभिभूताया बुद्धेरन्तर्मुखा या चिच्छायासङ्क्रान्तिः सा विवेकख्यातिरुच्यते; तस्यां च सन्ततत्वेन प्रवृत्तायां सत्यां दृश्यस्याधिकारनिवृत्तेर्भवत्येव कैवल्यम् ॥ २६ ॥

उत्पन्नविवेकख्यातेः पुरुषस्य यादृशी प्रज्ञा भवति तां कथयन् विवेकख्यातेरेव

---

* हेयं·······ते' इति वाक्यं पूर्वसूत्रव्याख्यानेक्वचित् पठ्यते। ❀पाठसमीक्षा भूमिकायां द्रष्टव्या। () नैतस्य मूर्तद्रव्यवत् परित्यागो (पाठा०)। †दृश्यपरित्यागस्य (पाठा०)। ‡ व्युत्थानरूपः (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वरूपमाह—

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमौ प्रज्ञा† ॥ २७ ॥

तस्योत्पन्नविवेकज्ञानस्य, ज्ञातव्य-विवेकरूपा प्रज्ञा प्रान्तभूमौ सकलसालम्बनसमाधिपर्य्यन्ते ()सप्तप्रकारा भवन्तीत्यर्थः। तत्र कार्य्यविमुक्तिरूपाश्चतुःप्रकाराः,—ज्ञातं मया ज्ञेयं न ज्ञातव्यं किञ्चिदस्ति, क्षीणा मे क्लेशा न किञ्चित् क्षेतव्यमस्ति,अधिगतं मया ज्ञानं,प्राप्ता मया विवेकख्यातिरिति प्रत्ययान्तरपरिहारेण तस्यामवस्थायाम् ईदृश्येव प्रज्ञा जायते। ईदृशी प्रज्ञा कार्य्यविषयं निर्मलं ज्ञानं, कार्य्यविमुक्तिरित्युच्यते। चित्तविमुक्तिस्त्रिधा—चरितार्था मे बुद्धिः, गुणा हृताधिकारा गिरिशिखरनिपतिता इव ग्रावाणो न पुनः स्थितिं यास्यन्ति स्वकारणे, प्रविलयाभिमुखानां गुणानां मोहाभिधानमूलकारणाभावाद् निष्प्रयोजनत्वाच्चामीषां कुतः प्ररोहो भवेत्? ०स्वस्थीभूतश्च मे समाधिः,तस्मिन् सति स्वरूपप्रतिष्ठोऽहमिति। ईदृशी त्रिप्रकारा चित्तविमुक्तिः। तदेवमीदृश्यां सप्तविधभूमिप्रज्ञायामुपजातायां पुरुषः केवल इत्युच्यते ॥ २७ ॥

विवेकख्यातिः संयोगाभावहेतुरित्युक्तं, तस्यास्तु उत्पत्तौ किं निमित्तम् इत्याह—

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥२८॥

योगाङ्गानि वक्ष्यमाणानि, तेषामनुष्ठानाज् ज्ञानपूर्वकाभ्यासाद् आविवेकख्यातेरशुद्धिक्षये चित्तसत्त्वस्य प्रकाशावरण[]रूपक्लेशात्मकाशुद्धिक्षये या ज्ञानदीप्तिः, तारतम्येन सात्त्विकः परिणामो विवेकख्यातिपर्य्यन्तस्तस्याः ख्यातेर्हेतुरित्यर्थ ॥२८॥

योगाङ्गानामनुष्ठानादशुद्धिक्षय इत्युक्तं, कानि पुनस्तानि योगाङ्गानीति तेषामुद्देशमाह—

यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि * ॥२९॥

इह कानिचित् समाधेः साक्षादुपकारकाणि, यथा धारणादीनि; कानिचि

† पाठसमीक्षा भूमिकायां द्रष्टव्या। () सकलालम्बनसमाधिभूमिपर्यन्तं (पाठा०)
० सात्मीभूतश्च (पाठा०)। [] लक्षणक्लेशरूपा शुद्धि (पाठा०)।
* 'समाधयोऽस्यैवाङ्गानि' इति सूत्रं क्वचिन्मुद्रितम्, तच्चापपाठः।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिपक्षभूतहिंसादिवितर्कोन्मूलनद्वारेण समाधिमुपकुर्वन्ति, यथा यमादयः; तत्र आसनादीनामुत्तरोत्तरमुपकारकत्वं, तद् यथा—सत्यासनजये प्राणायामस्थैर्य्यम्; एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ २९ ॥

क्रमेणैषां स्वरूपमाह—

अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः ॥३०॥

तत्र प्राणवियोगप्रयोजनव्यापारो हिंसा, सा च सर्वानर्थहेतुः, तदभावोऽहिंसा। हिंसायाः सर्वप्रकारेणैव परिहार्य्यत्वात् प्रथमं तदभावरूपाया अहिंसाया निर्देशः। सत्यं वाङ्मनसोर्यथार्थत्वम्। स्तेयं परस्वापहरणं, तदभावोऽस्तेयम्, ब्रह्मचर्यमुपस्थ-संयमः०। अपरिग्रहो भोगसाधनानामनङ्गीकारः। ते एतेऽहिंसादयः पञ्च यमशब्द-वाच्या योगाङ्गत्वेन निर्दिष्टाः ॥ ३० ॥

एषां विशेषमाह—

*जाति-देश-काल-समयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥३१॥

जातिर्ब्राह्मणत्वादिः, देशस्तीर्थादिः, कालश्चतुर्दश्यादिः, समयो ब्राह्मणप्रयोजनादिः, एतैश्चतुर्भिरनवच्छिन्नाः पूर्वोक्ता अहिंसादयो यमाः सर्वासु क्षिप्तादिषु चित्तभूमिषु भवा महाव्रतमित्युच्यते; † तद् यथा—ब्राह्मणं न हनिष्यामि, तीर्थे न कञ्चन हनिष्यामि, चतुर्दश्यां न हनिष्यामि, देवब्राह्मणप्रयोजनव्यतिरेकेण कमपि न हनिष्यामि इत्येवं चतुर्विधावच्छेदव्यतिरेकेण किञ्चित् क्वचित् कदाचित् कस्मिंश्चिदर्थे न हनिष्यामीत्यनवच्छिन्नाः। एवं सत्यादिषु यथायोगं योज्यम्; इत्थमनियतीकृताः सामान्येनैव प्रवृत्ता महाव्रतमित्युच्यते, न पुनः ()परकीयपरिच्छिन्नावधारणम् ॥ ३१ ॥

नियमानाह—

शौच-सन्तोष-तपः-स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥३२॥

शौचं द्विविधं—बाह्यमाभ्यन्तरञ्च; बाह्यं मृज्जलादिभिः कायादिप्रक्षालनम्,

० नियमः (पाठा०)। * केषुचित् संस्करणेषु 'एते तु जाति' इति पठ्यते, सोऽपपाठः। † उच्यन्ते (पाठा०)। () परकीयेति क्वचिन्न।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आभ्यन्तरं मैत्र्यादिभिश्चित्तमलानां प्रक्षालनम् । सन्तोषस्तुष्टिः । शेषाः प्रागेव (२।१) कृतव्याख्यानाः । एते शौचादयो नियमशब्दवाच्या ॥३२॥

कथमेषां योगाङ्गत्वमित्याह—

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥

वितर्क्यन्ते इति वितर्का योगपरिपन्थिनो हिंसादयः, तेषां प्रतिपक्षभावने सति यदा बाधा भवति, तदा योगः सुकरो भवतीति भवत्येव यम-नियमयोर्योगाङ्गत्वम् ॥ ३३ ॥

इदानीं वितर्काणां स्वरूपं भेदप्रकारं फलञ्च क्रमेणाह—

वितर्का हिंसादयः कृत-कारितानुमोदिता लोभ-क्रोध-मोह-पूर्वका मृदु-मध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३४ ॥

एते पूर्वोक्ता हिंसादयः प्रथमं त्रिधा भिद्यन्ते, कृत-कारितानुमोदनभेदेन ; तत्र स्वयं निष्पादिताः कृताः ; 'कुरु कुरु' इति प्रयोजकव्यापारेण समुत्पादिताः कारिताः ; अन्येन क्रियमाणाः साध्वङ्गीकृता अनुमोदिताः । एतच्च त्रैविध्यं परस्परं व्यामोहनिराकरणावधारणायोच्यते, अन्यथा मन्दमतिरेवं मन्येत—मया स्वयं न कृतेति नास्ति मे दोषः । एतेषां कारणप्रतिपादनाय लोभ-क्रोध-मोहपूर्वका* इति । यद्यपि लोभः प्रथमं निर्दिष्टः,† तथाऽपि सर्वक्लेशानां मोहस्य अनात्मनि आत्माभिमानलक्षणस्य निदानत्वात्, तस्मिन् सति स्व-परविभागपूर्वकत्वेन लोभक्रोधादीनामुद्भवाद् मूलत्वमवसेयं, मोहपूर्विका दोषजातिरित्यर्थः । लोभस्तृष्णा, क्रोधः कृत्याकृत्यविवेकोन्मूलकः प्रज्वलनात्मकश्चित्तधर्मः । प्रत्येकं कृतादिभेदेन त्रिप्रकारा अपि हिंसादयो मोहादिकारणत्वेन त्रिधा भिद्यन्ते । एषामेव पुनरवस्थाभेदेन त्रैविध्यमाह, मृदु-मध्याधिमात्राः । मृदवो मन्दाः, न तीव्रा नापि मन्दा मध्याः, अधिमात्रास्तीव्राः । पाश्चात्त्या नवभेदाः, इत्थं त्रैविध्ये सति सप्तविंशतिर्भवति

* लोभक्रोधमोहाः (पाठा०) । † लोभक्रोधौ प्रथमं निर्दिष्टौ (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मृद्वादीनामपि प्रत्येकं मृदु-मध्याधिमात्रभेदात् त्रैविध्यं सम्भवति, तद् यथायोगं योज्यम्। तद् यथा—मृदुमृदुः, मृदुमध्यः, मृदुतीव्र इति। एषां फलमाह—दुःखाज्ञानानन्तफलाः, दुःखं प्रतिकूलतयाऽवभासमानो राजसश्चित्तधर्मः। अज्ञानं मिथ्याज्ञानं संशय-विपर्य्ययरूपं, ते दुःखाज्ञाने अनन्तमपरिच्छिन्नं फलं येषां ते तथोक्ताः। इत्थं तेषां स्वरूपकारणादिभेदेन ज्ञातानां प्रतिपक्षभावनया योगिना परिहारः कर्त्तव्य इत्युपदिष्टं भवति ॥३४॥

एषाम् अभ्यासवशात् प्रकर्षमागच्छताम् अनुनिष्पादिन्यः सिद्धयो यथा भवन्ति तथा क्रमेण प्रतिपादयितुमाह—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥३५॥

तस्य अहिंसां भावयतः, सन्निधौ सहजविरोधिनामप्यहिनकुलादीनां वैरत्यागो निर्मत्सरतयावस्थानं भवति, हिंस्रस्वभावा अपि हिंसां त्यजन्तीत्यर्थः† ॥ ३५ ॥

सत्याभ्यासवतः किं भवतीत्याह—

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥

क्रियमाणा हि क्रिया यागादिकाः फलं स्वर्गादिकं प्रयच्छन्ति*। तस्य तु सत्याभ्यासवतो योगिनस्तथा सत्यं प्रकृष्यते, यथा क्रियायामकृतायामपि योगी फलमाप्नोति; तद्वचनाद् यस्य कस्यचित् क्रियामकुर्वतोऽपि क्रिया फलं भवतीत्यर्थः ॥ ३६ ॥

अस्तेयाभ्यासवतः फलमाह—

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥

अस्तेयं यदाभ्यस्यति, तदास्य तत्प्रकर्षान्निरभिलाषस्यापि सर्वतो दिव्यानि रत्नानि उपतिष्ठन्ते ॥ ३७ ॥

† हिंस्रा अपि हिंस्रत्वं परित्यजन्तीत्यर्थः (पाठा०)। * यागादिका फलं स्वर्गादिकं प्रयच्छति (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मचर्य्याभ्यासस्य फलमाह—

ब्रह्मचर्य्यप्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः ॥ ३८ ॥

यः किल ब्रह्मचर्य्यमभ्यस्यति, तस्य तत्प्रकर्षान्निरतिशयं वीर्य्यं सामर्थ्यमावि र्भवति; वीर्य्यनिरोधे हि ब्रह्मचर्य्यस्य प्रकर्षाच्छरीरेन्द्रियमनःसु वीर्य्यं प्रकर्षम् गच्छति ॥ ३८ ॥

अपरिग्रहस्य फलमाह—

अपरिग्रहस्थैर्य्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ॥ ३९ ॥

कथमित्यस्य* भावः कथन्ता, जन्मनः कथन्ता जन्मकथन्ता, तस्याः सम्बोध सम्यग्ज्ञानं, जन्मान्तरे कोऽहमासम् कीदृशः किंकार्य्यकारीति जिज्ञासा सर्वमेव सम्यग् जानातीत्यर्थः। न केवलं भोगसाधनपरिग्रह एव परिग्रह यावदात्मनः शरीरपरिग्रहोऽपि परिग्रहः, भोगसाधनत्वाच्छरीरस्य ; तस्मिन् स रागानुबन्धाद् बहिर्मुखायामेव प्रवृत्तौ न तात्त्विकज्ञानप्रादुर्भावः। यदा पु शरीरादिपरिग्रहनैरपेक्ष्येण माध्यस्थ्यमवलम्बते,तदा मध्यस्थस्य रागादित्यागात्सम्य ज्ञानहेतुर्भवत्येव पूर्वापरजन्मसम्बोधः ॥ ३९ ॥

उक्ता यमानां सिद्धयः ; अथ नियमानामाह—

शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥ ४० ॥

यः शौचं भावयति, तस्य स्वाङ्गेष्वपि कारणस्वरूपपर्य्यालोचनद्वारेण जुगु घृणा समुपजायते ; अशुचिरयं कायो नात्राग्रहः कार्य्य इति ; अमुनैव हे परैरन्यैश्च कायवद्भि रसंसर्गः सम्पर्काभावः, संसर्गपरिवर्जनमित्यर्थः। यः स्वमेव कायं जुगुप्सते तत्तदवद्यदर्शनात्, स कथं परकीयैस्तथाभूतैश्च कायैः सं मनुभवति ? ॥ ४० ॥

---

* कथमो भावः (पाठा०)। † रागादित्यागात् सम्यग्ज्ञानहेतुः (पाठा०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शौचफलान्तरमाह—

सत्त्वशुद्धि-सौमनस्यैकाग्रतेन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥४१॥

भवन्तीति वाक्यशेषः । सत्त्वं प्रकाश-सुखाद्यात्मकं, तस्य शुद्धी रजस्तमोभ्यामनभिभवः । सौमनस्यं खेदाननुभवेन मानसी प्रीतिः । एकाग्रता नियतविषये चेतसः स्थैर्य्यम् । इन्द्रियजयो विषयपराङ्मुखाणामिन्द्रियाणाम् आत्मन्यवस्थानम् । आत्मदर्शने विवेकख्यातिरूपे, चित्तस्य योग्यत्वं समर्थत्वम् । शौचाभ्यासवत एव एते सत्त्वशुद्ध्यादयः क्रमेण प्रादुर्भवन्ति ; तथा हि—सत्त्वशुद्धेः सौमनस्यं, सौमनस्यादेकाग्रता, एकाग्रताया इन्द्रियजयः, तस्मादात्मदर्शनयोग्यतेति ॥ ४१ ॥

सन्तोषाभ्यासस्य* फलमाह—

सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः ॥ ४२ ॥

सन्तोषप्रकर्षेण योगिनस्तथाविधमान्तरं सुखमाविर्भवति, यस्य वाह्यं विषयसुखं शतांशेनापि† न समम् ॥ ४२ ॥

तपसः फलमाह—

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ ४३ ॥

तपः समभ्यस्यमानं चेतसः क्लेशादिलक्षणाशुद्धिक्षयद्वारेण कायेन्द्रियाणां सिद्धिप्रकर्षमादधाति । अयमर्थः—चान्द्रायणादिना चित्तक्लेशक्षयः, तत्क्षयादिन्द्रियादीनां सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्टदर्शनादिसामर्थ्यमाविर्भवति, कायस्य यथेच्छमणुत्व-महत्त्वादीनि ॥ ४३ ॥

स्वाध्यायस्य फलमाह—

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ॥ ४४ ॥

अभिप्रेतमन्त्रजपादिलक्षणे स्वाध्याये प्रकृष्यमाणे योगिन इष्टाया ‡अभिप्रेतायाः देवतायाः सम्प्रयोगो भवति, सा देवता प्रत्यक्षा भवतीत्यर्थः ॥ ४४ ॥

* सन्तोषाभ्यासवतः (पाठा०) । † वाह्यं सुखं लेशेनापि (पाठा०) ।
‡ इष्टयाऽभिप्रेतया देवतया (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ईश्वरप्रणिधानस्य फलमाह—

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ ४५ ॥

ईश्वरे यत् प्रणिधानं भक्तिविशेषस्तस्माद् समाधेरुक्तलक्षणस्याविर्भावो भवति, यस्मात् स भगवानीश्वरः प्रसन्नः सन्नतरायरूपान् क्लेशान् परिहृत्य समाधिं सम्बोधयति ॥ ४५ ॥

यमनियमानुक्त्वा आसनमाह—

स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६ ॥

आस्यतेऽनेनेत्यासनं पद्मासन-दण्डासन-स्वस्तिकादि ; तद् यदा स्थिरं निष्कम्पं सुखमनुद्वेजनीयञ्च भवति तदा †योगाङ्गतां भजते ॥ ४६ ॥

तस्यैव स्थिर-सुखप्राप्त्यर्थमुपायमाह—

प्रयत्नशैथिल्यानन्त्यसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

तदासनं प्रयत्नशैथिल्येन आनन्त्यसमापत्त्या च स्थिरं सुखं भवतीति सम्बन्धः। यदा यदा 'आसनं बन्धामीति' इच्छां करोति, प्रयत्नशैथिल्येऽपि अक्लेशेनैव तदासनं सम्पद्यते, यदा चाकाशादिगते आनन्त्ये चेतसः समापत्तिः क्रियते अव्यवधानेन ❀ तादात्म्यमापद्यते, तदा देहाहङ्काराभावान्नासनं दुःखजनकं भवति। अस्मिंश्चासनजये सति समाध्यन्तरायभूता न प्रभवन्ति अङ्गमेजयत्वादयः ॥ ४७ ॥

तस्यैवानुनिष्पादितं* फलमाह—

ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥ ४८ ॥

तस्मिन्नासनजये सति द्वन्द्वैः शीतोष्णक्षुत्तृष्णादिभिर्योगी नाभिहन्यते इत्यर्थः ॥ ४८ ॥

---

† तद्योगाङ्गतां (पाठा०)। ❀ अवधानेन (पाठा०)। * अनुनिष्पादितं (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आसनजयादनन्तरं प्राणायाममाह---

तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥४९॥

आसनस्थैर्य्ये सति तन्निमित्तकप्राणायामलक्षणो योगाङ्गविशेषोऽनुष्ठेयो भवति। कीदृशः ? श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदलक्षणः ; श्वास-प्रश्वासौ निरुक्तौ (१।३१), तयोस्त्रिधा रेचन-स्तम्भन†पूरणद्वारेण बाह्याभ्यन्तरेषु स्थानेषु गतेः प्रवाहस्य विच्छेदो धारणं, प्राणायाम उच्यते ॥ ४९ ॥

तस्यैव सुखावगमाय विभज्य स्वरूपं कथयति---

स तु बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिदेशकालसङ्ख्याभिः परिदृष्टो दीर्घ-सूक्ष्मः ॥ ५० ॥

बाह्यवृत्तिः श्वासो रेचकः, अन्तर्वृत्तिः प्रश्वासः पूरकः, आन्तरस्तम्भकवृत्तिः() कुम्भकः, तस्मिन् जलमिव कुम्भे निश्चलतया प्राणा अवस्थाप्यन्ते इति कुम्भकः। त्रिविधोऽयं प्राणायामः देशेन कालेन सङ्ख्यया चोपलक्षितो दीर्घ-सूक्ष्मसंज्ञो भवति। देशोपलक्षितो यथा ‡नासाप्रदेशान्तादि। कालोपलक्षितो यथा षट्त्रिंशन्मात्रादिप्रमाणः। सङ्ख्ययोपलक्षितो यथा इयतो वारान् कृत एतावद्भिः श्वास-प्रश्वासैः प्रथम उद्घातो भवतीति एतज्-ज्ञानाय सङ्ख्याग्रहणमुपात्तम्। उद्घातो नाम नाभिमूलात् प्रेरितस्य वायोः शिरस्यभिहननम् ॥ ५० ॥

त्रीन् प्राणायामानभिधाय चतुर्थमभिधातुमाह---

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१ ॥

प्राणस्य बाह्यो विषयो नासादेशान्तादिः,※ आभ्यन्तरो विषयो हृदयनाभिचक्रादिः, तौ द्वौ विषयौ आक्षिप्य पर्य्यालोच्य* यः स्तम्भरूपी गतिविच्छेदः स चतुर्थः प्राणायामः। तृतीयस्मात् कुम्भकाद् अयमस्य विशेषः—स बाह्याभ्यन्तरविषयौ

† रेचनाक्षेपण (पाठा॰)। () अन्तस्तम्भवृत्तिः (पाठा॰)। ‡ नासाद्वादशान्तादौ (पाठा॰)। ※ नासाद्वादशान्तादिः (पाठा॰)। * पर्यालोचनः (पाठा॰)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपर्य्यालोच्यैव सहसा तप्तोपलनिपतितजलन्यायेन युगपत् स्तम्भवृत्त्या ()निष्पाद्यते; अस्य तु विषयद्वयाक्षेपको† निरोधः। अयमपि पूर्ववद् देशकालसङ्ख्याभिरुपलक्षितो द्रष्टव्यः ॥ ५१ ॥

चतुर्विधस्यास्य फलमाह—

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥

ततः तस्मात् प्राणायामात् प्रकाशस्य चित्तसत्त्वगतस्य यदावरणं क्लेशरूपं तत् क्षीयते विनश्यतीत्यर्थः ॥ ५२ ॥

फलान्तरमाह—

धारणासु च योग्यता मनसः ॥ ५३ ॥

धारणा वक्ष्यमाणलक्षणा, तासु प्राणायामैः क्षीणदोषं मनो यत्र धार्य्यते तत्र तत् स्थिरीभवति न विक्षेपं भजते ॥ ५३ ॥

प्रत्याहारस्य लक्षणमाह—

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥

'इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रतीपमाह्रियन्तेऽस्मिन्' इति प्रत्याहारः; स च कथं निष्पद्यत इत्याह—चक्षुरादीनामिन्द्रियाणां स्वविषयो रूपादिः, तेन सम्प्रयोगः तदाभिमुख्येन वर्त्तनं, तदभावस्तदाभिमुख्यं परित्यज्य स्वरूपमात्रेऽवस्थानं तस्मिन् सति चित्तमात्रानुकारिणीन्द्रियाणि भवन्ति, यतश्चित्तमनुवर्तमानानि मधुकरराजमिव ꙮमक्षिकाः सर्वाणीन्द्रियाणि प्रतीयन्ते; अतश्चित्तनिरोधे तानि प्रत्याहृतानि भवन्ति, तेषां तत्स्वरूपानुकारः प्रत्याहार उक्तः ॥ ५४ ॥

प्रत्याहारफलमाह—

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥

अभ्यस्यमाने हि प्रत्याहारे तथा वश्यानि आयत्तानीन्द्रियाणि सम्पद्यन्ते यथा बाह्यविषयाभिमुखतां नीयमानान्यपि न यान्ति इत्यर्थः ॥ ५५ ॥

() निष्पद्यते (पाठा०)। † विषयापेक्षको (पाठा०), विषयदयापेक्षको (पाठा०)।
ꙮ मधुमक्षिकाः (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तदेवं *प्रथमपादोक्तयोगस्याङ्गभूतक्लेशतनूकरणफलं क्रियायोगमभिधाय, क्लेशानामुद्देशं स्वरूपं कारणं क्षेत्रं फलञ्चोक्त्वा, कर्मणामपि भेदं कारणं स्वरूपं फलञ्चाभिधाय, विपाकस्य कारणं स्वरूपञ्चाभिहितम्; ततस्त्याज्यत्वात् क्लेशादीनां ज्ञानव्यतिरेकेण त्यागस्य अशक्यत्वाज् ज्ञानस्य च शास्त्रायत्तत्वाच् शास्त्रस्य हेय-हानकारणोपादेयोपादानकारणबोधकत्वेन चतुर्व्यूहत्वाद् हेयस्य हानव्यतिरेकेण स्वरूपानिष्पत्तेर्हानसहितं चतुर्व्यूहं स्वस्वकारणसहितमभिधाय, उपादेयकारणभूताया विवेकख्यातेः कारणभूतानामन्तरङ्ग-बहिरङ्गभावेन स्थितानां यमादीनां स्वरूपं फलसहितं व्याकृत्य, आसनादीनां धारणापर्य्यन्तानां परस्परमुपकार्य्योपकारकभावेनावस्थितानामुद्देशमभिधाय, प्रत्येकं लक्षणकरणपूर्वकंफलमभिहितम्; तदयं योगो यम-नियमादिभिः प्राप्तबीजभावः,आसन-प्राणायामैरङ्कुरितः, प्रत्याहारेण पुष्पितः, ध्यान-धारणा-समाधिभिः फलिष्यतीति व्याख्यातःसाधनपादः।

इति धारेश्वर † भोजवृविरचितायां राजमार्त्तण्डाभिधायां

पातञ्जलवृत्तौ साधनपादः।

अथ विभूतिपादः।

यत्पादपद्मस्मरणादणिमादिविभूतयः।

भवन्ति भविनामस्तु भूतनाथः स भूतये॥

तदेवं पूर्वोद्दिष्टं धारणाद्यङ्गत्रयं निर्णेतुं संयमसंज्ञाभिधानपूर्वकं बाह्याभ्यन्तरादिसिद्धिप्रतिपादनाय लक्षयितुमुपक्रमते। तत्र धारणायाः स्वरूपमाह—

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा॥ १॥

देशे नाभिचक्र-नासाग्रादौ चित्तस्य ‡बन्धो विषयान्तरपरिहारेण यत् स्थिरी-

---

* पादोक्तलक्षणस्य योगस्य (पाठा०)। † महाराजश्रीभोज (पाठा०)।
‡ संबन्धः (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करणं, सा चित्तस्य धारणोच्यते। अयमर्थः—मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मवासितान्तःकरणेन यम-नियमवता जितासनेन परिहृतप्राणविक्षेपेण प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामेण निर्बाधे प्रदेश ऋजुकायेन जितद्वन्द्वेन योगिना नासाग्रादौ सम्प्रज्ञातस्य समाधेरभ्यासाय चित्तस्य स्थिरीकरणं कर्त्तव्यमिति ॥ १ ॥

धारणामभिधाय ध्यानमभिधातुमाह—

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥

तत्र तस्मिन् प्रदेश, यत्र चित्तं धृतं तत्र, प्रत्ययस्य ज्ञानस्य, या एकतानता विसदृशपरिणामपरिहारद्वारेण यदेव धारणायाम् अवलम्बनीकृतं, तदवलम्बनतयैव निरन्तरमुत्पत्तिः सा ध्यानमुच्यते ॥ २ ॥

चरमयोगाङ्गं समाधिमाह—

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ ३ ॥

तदेवोक्तलक्षणं ध्यानं, *यत्रार्थमात्रनिर्भासम् अर्थाकारसमावेशादुद्भूतार्थरूपं, †न्यग्भूतज्ञानस्वरूपत्वेन स्वरूपशून्यतामिवापद्यते, स समाधिरित्युच्यते; सम्यक आधीयत एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः ॥ ३ ॥

उक्तलक्षणस्य योगाङ्गत्रयस्य व्यवहाराय स्वशास्त्रे तान्त्रिकीं संज्ञां कर्त्तुमाह—

त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥

एकस्मिन् विषये धारणा-ध्यान-समाधित्रयं प्रवर्त्तमानं संयमसंज्ञया शास्त्रे व्यवह्रियते ॥ ४ ॥

तस्य फलमाह—

तज्जयात् प्रज्ञालोकः ॥ ५ ॥

तस्य संयमस्य जयादभ्यासेन सात्म्योत्पादनात्, प्रज्ञाया †विवेकख्यातेः, आलोकः प्रसवो भवति, प्रज्ञा ज्ञेयं सम्यगवभासयतीत्यर्थः ॥ ५ ॥

---

* यथार्थमात्र (पाठा०)। † रूपमश्रुतं ज्ञानस्वरूपत्वेन (पाठा०)।
† विवेकस्वरूपाया (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्योपयोगमाह—

तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥

तस्य संयमस्य, भूमिषु स्थूल-सूक्ष्मावलम्बनभेदेन स्थितासु चित्तवृत्तिषु, विनियोगः कर्त्तव्यः, अधरामधरां चित्तभूमिं जितां जितां ज्ञात्वोत्तरस्यां भूमौ संयमः कार्य्यः; न ह्यनात्मीकृताधरभूमिः*रुत्तरस्यां भूमौ संयमं कुर्वाणः फलभाग्भवति ।६।

साधनपादे योगाङ्गान्यष्टावुद्दिश्य पञ्चानां लक्षणं विधाय त्रयाणां कथं न कृतमित्याशङ्क्याह—

त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥ ७ ॥

पूर्वेभ्यो यमादिभ्यो योगाङ्गेभ्यः पारम्पर्य्येण समाधेरुपकारकेभ्यो धारणादियोगाङ्गत्रयं सम्प्रज्ञातस्य समाधेरन्तरङ्गं-समाधिस्वरूपनिष्पादनात् ॥ ७ ॥

तस्यापि समाध्यन्तरापेक्षया वहिरङ्गत्वमाह—

तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥ ८ ॥

निर्बीजस्य निरालम्बनस्य शून्यभावनाऽपरपर्य्यायस्य समाधेरेतदपि योगाङ्गत्रयं वहिरङ्गं, पारम्पर्य्येणोपकारकत्वात् ॥ ८ ॥

इदानीं योगसिद्धीर्व्याख्यातुकामः संयमस्य विषयविशुद्धिं कर्त्तुं क्रमेण परिणामत्रयमाह—

व्युत्थान-निरोधसंस्कारयोरभिभव-प्रादुर्भावौ निरोधक्षण-चित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥९॥

व्युत्थानं क्षिप्त-मूढ-विक्षिप्ताख्यं भूमित्रयं, निरोधः प्रकृष्टसत्त्वस्य अङ्गितया चेतसः परिणामः, ताभ्यां व्युत्थान-निरोधाभ्यां, यौ जनितौ संस्कारौ तयोर्यथाक्रमम् अभिभव-प्रादुर्भावौ यदा भवतः; अभिभवो न्यग्भूततया कार्य्यकरणासामर्थ्येना-

* नह्यसावात्मीकृताधरभूमिः (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वस्थानं, प्रादुर्भावो वर्त्तमानेऽध्वनि अभिव्यक्तरूपतया *आविर्भावः;तदा निरोधक्षणे चित्तस्योभयक्षणवृत्तित्वादन्वयो यः स निरोधपरिणाम उच्यते। अयमर्थः—यदा व्युत्थानसंस्काररूपो धर्मस्तिरोभूतो भवति, निरोधसंस्काररूपश्च आविर्भवति, धर्मिरूपतया च चित्तमुभयान्वयित्वेऽपि निरोधात्मना† अवस्थितं प्रतीयते, तदा स निरोधपरिणामशब्देन व्यवह्रियते; चलत्वात् गुणवृत्तस्य यद्यपि चेतसो निश्चलत्वं नास्ति, तथापि एवम्भूतः परिणामः स्थैर्य्यमुच्यते ॥ ९ ॥

तस्यैव फलमाह—

तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥

तस्य चेतसः, ‡निरुक्तान्निरोधसंस्कारात् प्रशान्तवाहिता भवति; परिहृत-विक्षेपतया सदृशप्रवाह-परिणामि चित्तं भवतीत्यर्थः ॥१०॥

निरोधपरिणामम् अभिधाय समाधिपरिणाममाह—

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥११॥

सर्वार्थिता चलत्वान्नानाविधार्थग्रहणं, चित्तस्य विक्षेपो धर्मः। एकस्मिन्नेवालम्बने सदृशपरिणामिता एकाग्रता, सापि चित्तस्य धर्मः। तयोर्यथाक्रमं क्षयोदयौ सर्वार्थितालक्षणस्य धर्मस्य क्षयोऽत्यन्ताभिभवः, एकाग्रतालक्षणस्य धर्मस्य प्रादुर्भावोऽभिव्यक्तिः, चित्तस्योद्रिक्तसत्त्वस्यान्वयितयावस्थानं समाधिपरिणाम इत्युच्यते। पूर्वस्मात् परिणामादस्यायं विशेषः—तत्र संस्कारलक्षणयोः धर्मयोरभिभव-प्रादुर्भावौ, पूर्वस्य व्युत्थानसंस्काररूपस्य न्यग्भावः, उत्तरस्य निरोधसंस्काररूपस्योद्भवोऽनभिभूतत्वेनावस्थानम्; इह तु क्षयोदयाविति सर्वात्मतारूपस्य विक्षेपस्यात्यन्ततिरस्कारादनुत्पत्तिरतीतेऽध्वनि प्रवेशः क्षयः, एकाग्रतालक्षणस्य धर्मस्योद्भवो वर्त्तमानेऽध्वनि प्रकटत्वम् ॥ ११ ॥

---

* अवस्थानम् (पाठा०)। † क्वचित् निरोधात्मनेति न पठ्यते, क्वचित् निरोधतया इति पाठः। ‡ उक्तान् (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तृतीयमेकाग्रतापरिणाममाह—

शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः❀ ॥ १२ ॥

समाहितस्यैव चित्तस्यैकप्रत्ययो वृत्तिविशेषः शान्तः, अतीतमध्वानं प्रविष्टः। अपरस्तु उदितो वर्त्तमानेऽध्वनि स्फुरितः। द्वावपि समाहितचित्तत्वेन तुल्यावेकरूपालम्बनत्वेन सदृशौ प्रत्ययौ, उभयत्रापि समाहितस्यैव चित्तस्यान्वयित्वेनावस्थानं, स एकाग्रता-परिणाम इत्युच्यते ॥ १२ ॥

चित्तपरिणामोक्तं रूपमन्यत्राप्यतिदिशन्नाह—

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्म-लक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥ १३ ॥

एतेन त्रिविधेनोक्तेन चित्तपरिणामेन, भूतेषु स्थूल-सूक्ष्मेषु, इन्द्रियेषु *बुद्धिकर्मान्तःकरणभेदेनावस्थितेषु, धर्म-लक्षणावस्थाभेदेन त्रिविधः परिणामो व्याख्यातोऽवगन्तव्यः। अवस्थितस्य धर्मिणः पूर्वधर्मनिवृत्तौ धर्मान्तरापत्तिः धर्मपरिणामः; यथा—मृल्लक्षणस्य धर्मिणः पिण्डरूपधर्मपरित्यागेन घटरूपधर्मान्तरस्वीकारो धर्मपरिणाम इत्युच्यते। लक्षणपरिणामो यथा—तस्यैव घटस्यानागताध्वपरित्यागेन वर्त्तमानाध्वस्वीकारः। तत्परित्यागेनातीताध्वपरिग्रहः। अवस्थापरिणामो यथा—तस्यैव घटस्य प्रथमद्वितीययोः सदृशयोः काललक्षणयोः,(:) अन्वयित्वेन, यतश्च गुणवृत्तिर्न अपरिणम्यमाना क्षणमप्यस्ति ॥ १३ ॥

ननु कोऽयं धर्मीत्याशङ्क्य धर्मिणो लक्षणमाह—

शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥ १४ ॥

शान्ता ये कृतस्वस्वव्यापारा अतीतेऽध्वनि अनुप्रविष्टाः; उदिता य अनागतमध्वानं परित्यज्य वर्त्तमानेऽध्वनि† स्वव्यापारं कुर्वन्ति; अव्यपदेश्या ये शक्तिरूपेण

❀ सूत्रपाठविचारो भूमिकायां द्र० * बुद्धिकर्मलक्षणभेदेन (पाठा०)। (:) क्षणयोरन्वयित्वेन (पाठा०)। † व्यावर्तमाने (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थिता व्यपदेष्टुं न शक्यन्ते, तेषां यथास्वं सर्वात्मकत्वमित्येवमादयो नियतकार्य्य-कारणरूपयोग्यतयावच्छिन्ना शक्तिरेवेह धर्मशब्देनाभिधीयते । तं त्रिविधमपि धर्मं योऽनुपतति अनुवर्त्तते, अन्वयित्वेन स्वीकरोति स शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मीति उच्यते ; यथा—सुवर्णं रुचकरूपधर्मपरित्यागेन स्वस्तिकरूपधर्मान्तरपरिग्रहे सुवर्णरूपतयाऽनुर्त्तमानं तेषु धर्मेषु कथञ्चिद्भिन्नेषु धर्मिरूपतया सामान्यात्मना धर्मरूपतया विशेषात्मना स्थितमन्वयित्वेनाव‡भासते ॥ १४ ॥

एकस्य धर्मिणः कथमनेके परिणामा† इत्याशङ्कामपनेतुमाह—

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥

धर्माणाम् उक्तलक्षणानां यः क्रमस्तस्य यत् प्रतिक्षणमन्यत्वं परिदृश्यमानं, परिणामस्योक्तलक्षणस्यान्यत्वे नानाविधत्वे, हेतुर्लिङ्गं ज्ञापकं भवति । अयमर्थः— योऽयं नियतः क्रमः मृच्चूर्णाद् मृत्पिण्डः, ततः कपालानि, तेभ्यश्च घट इत्येवं क्रमरूपः परिदृश्यमानः परिणामस्य अन्यत्वमावेदयति । तस्मिन्नेव धर्मिणि यो लक्षणपरिणामस्य अवस्थापरिणामस्य च क्रमः, सोऽपि अनेनैव न्यायेन परिणामान्यत्वे गमकोऽवगन्तव्यः । सर्व एव भावा नियतेनैव क्रमेण प्रतिक्षणं ()परिणम्यमानाः परिदृश्यन्ते ; अतः सिद्धं क्रमान्यत्वात् परिणामान्यत्वम् । सर्वेषां चित्तादीनां परिणममानानां❀ केचिद्धर्माः प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यन्ते, यथा—सुखादयः संस्थानादयश्च । केचिदेकान्तेनानुमानगम्याः, यथा— धर्म*संस्कार-शक्तिप्रभृतयः । धर्मिणश्च भिन्नाभिन्नरूपतया सर्वत्रानुगमः ॥१५॥

इदानीमुक्तस्य संयमस्य विषयप्रदर्शनद्वारेण सिद्धीः प्रतिपादयितुमाह—

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥ १६ ॥

धर्म-लक्षणावस्थाभेदेन यत् परिणामत्रयमुक्तं, तत्र संयमात् तस्मिन् विषये

‡ अनुयायित्वेन, अनुपातित्वेन (पाठा०) । † धर्माः (पाठा०) । () परिणममानाः (पाठा०) । ❀ परिणम्यमानानाम् (पाठा०) । * क्वचित् सर्वसंस्कारेति पठ्यते, सचापपाठः ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वोक्तसंयमस्य करणात्, अतीतानागतज्ञानं योगिनः समाधिर्भवति† । इदमत्र तात्पर्य्यम्----अस्मिन् धर्मिणि अयं धर्मः, इदं लक्षणम्, इयमवस्था च अनागताद-ध्वनः समेत्य वर्त्तमाने अध्वनि स्वव्यापारं विधायातीतम् अध्वानं प्रविशतीत्येवं परिहृतविक्षेपतया यदा संयमं करोति, तदा यत् किञ्चिदनुत्पन्नमतिक्रान्तं, वा तत् सर्वं योगी जानाति; यतश्चित्तस्य शुद्धसत्त्वप्रकाशरूपत्वात् सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यम-विद्यादिभिर्विक्षेपैरपक्रियते[] । यदा तु तैस्तैरुपायैर्विक्षेपाः परिह्रियन्ते, तदा निवृत्त-मलस्यैव आदर्शस्य सर्वार्थग्रहणसामर्थ्यमेकाग्रतावलादाविर्भवति ॥१६॥

सिद्ध्यन्तरमाह----

शब्दार्थ-प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् सङ्करस्तत्प्रविभाग-संयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ १७ ॥

शब्दः श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यो नियतक्रमवर्णात्मा नियतैकार्थप्रतिपत्त्यवच्छिन्नः* ; यदि वा, क्रमरहितस्फोटात्मा ‡ध्वनिसंस्कृतबुद्धिग्राह्यः, उभयथाऽपि पदरूपो वाक्य-रूपश्च, तयोरेकार्थप्रतिपत्तौ सामर्थ्यात् । अर्थो जाति-गुण-क्रियादिः ; प्रत्ययो ज्ञानं, विषयाकारा बुद्धिवृत्तिः, एषां शब्दार्थज्ञानानां व्यवहारे इतरेतराध्यासाद् भिन्ना-नामपि बुद्ध्येकरूपतासम्पादनात् सङ्कीर्णत्वम् । तथा हि—गामानयेत्युक्ते कश्चिद् गोलक्षणमर्थं गोत्वजात्यवच्छिन्नं सास्नादिमत् पिण्डरूपं शब्दञ्च तद्वाचकं ज्ञानञ्च तद्ग्राहकमभेदेनैवाध्यवस्यति, न त्वस्य गोशब्दो वाचकः, अयं गोशब्दस्य वाच्यः, तयोरिदं ग्राहकं ज्ञानमिति भेदेन व्यवहरति । तथा हि—कोऽयमर्थः, कोऽयं शब्दः, किमिदं ज्ञानमिति पृष्टः सर्वत्रैकरूपमेवोत्तरं ददाति गौरिति । स यद्येकरूपतां न प्रतिपद्यते, कथमेकरूपमुत्तरं प्रयच्छति ? एवं तस्मिन् ()अवस्थिते योऽयं प्रवि-भागः,----इदं शब्दस्य तत्त्वं यद्वाचकत्वं नाम, इदमर्थस्य यद्वाच्यत्वम्, इदं ज्ञानस्य, यत् प्रकाशकत्वमिति प्रविभागं विधाय तस्मिन् प्रविभागे यः संयमं करोति

† आविर्भवति (पाठा०) । [] विक्षेपैरजस्रं परिह्रियते (पाठा०) । ‡ शास्त्रसंस्कृत (पाठा०) । * प्रतिपत्तिविच्छिन्नः (पाठा०) । () एकस्मिन् स्थिते (पाठा०), एतस्मिन् स्थिते (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्य सर्वेषां भूतानां मृग-पक्षि-सरीसृपादीनां यद् रुतं यः शब्दस्तत्र ज्ञानमुत्पद्यते, अनेनैवाभिप्रायेणै तेन प्राणिनायं शब्दः समुच्चारित इति सर्वं जानाति ॥१७॥

सिद्धयन्तरमाह—

संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ॥ १८ ॥

द्विविधाश्चित्तस्य वासनारूपाः संस्काराः ; केचित् स्मृतिमात्रोत्पादनफलाः, केचिज् जात्यायुर्भोगलक्षणा विपाकहेतवः ; यथा—धर्माधर्माख्याः, तेषु संस्कारेषु यदा संयमं करोति, एवं मया सोऽर्थोऽनुभूतः, एवं मया सा क्रिया निष्पादितेति पूर्ववृत्तमनुसन्दधानो ()भावयन्नेव प्रबोधकमन्तरेण उद्बुद्धसंस्कारः सर्वमतीतं स्मरति; क्रमेण साक्षात्कृतेषूद्बुद्धेषु संस्कारेषु पूर्वजन्मान्तरानुभूतानपि जात्यादीन् प्रत्यक्षेण पश्यति ॥१८॥

सिद्धयन्तरमाह—

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥१९॥

प्रत्ययस्य परचित्तस्य केनचिद् मुखरागादिना लिङ्गेन गृहीतस्य, यदा संयमं करोति, तदा परकीयचित्तस्य ज्ञानमुत्पद्यते, सरागम् अस्य चित्तं वीतरागं वेति परचित्तगतान् सर्वानपि धर्माञ् जानातीत्यर्थः ॥ १९ ॥

अस्यैव परचित्तज्ञानस्य विशेषज्ञानमाह—

न च तत् सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ॥ २०॥

तस्य परस्य यच्चित्तं तत् सालम्बनं स्वकीयेनालम्बनेन सहितं न शक्यते ज्ञातुम्, आलम्बनस्य केनचिल्लिङ्गेनाविषयीकृतत्वात्; लिङ्गाद्धि चित्तमात्रं परस्यावगतं न तु नीलविषयमस्य चित्तं पीतविषयमिति वा; यच्च न गृहीतं तत्र संयमस्य कर्त्तुमशक्यत्वान् न भवति परचित्तस्य यो विषयस्तत्र ज्ञानं, तस्मात् परकीय-चित्तं नालम्बनसहितं गृह्यते, तस्यालम्बनस्यागृहीतत्वात् ; चित्तधर्माः

() भावनयैव (पाठा०) । सूत्रसत्ताविचारो भूमिकायां द्र० ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुनर्गृह्यन्त एव। यदा तु किमनेनालम्बितमिति प्रणिधानं करोति, तदा तत्संयमात्तद्विषयमपि ज्ञानम् उत्पद्यत एव ॥ २० ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुष्प्रकाशासंयोगेऽन्तर्द्धानम् ❀ **॥ २१ ॥**

कायः शरीरं, तस्य रूपं चक्षुर्ग्राह्यो गुणः, तस्मिन्नस्त्यस्मिन्† काये रूपमिति संयमात्तस्य रूपस्य चक्षुर्ग्राह्यत्वरूपा या शक्तिस्तस्याः स्तम्भे भावनावशात् प्रतिबन्धे, चक्षुष्प्रकाशासंयोगे चक्षुषः प्रकाशः सत्त्वधर्मः, तस्य असंयोगे तद्ग्रहणव्यापाराभावे योगिनोऽन्तर्द्धानं भवति, न केनिचदसौ दृश्यत इत्यर्थः। एतेनैव* रूपान्तर्द्धानोपायप्रदर्शनेन शब्दादीनां श्रोत्रादिग्राह्यणामन्तर्द्धानमुक्तं वेदितव्यम् ॥ २१ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सोपक्रमं निरुपक्रमञ्च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥ २२ ॥

आयुर्विपाकं यत् पूर्वकृतं कर्म तत् द्विप्रकारं, सोपक्रमं निरुपक्रमञ्च ; तत्र सोपक्रमं यत् फलजननाय ()सहोपक्रमेण कार्य्यकरणाभिमुख्येन वर्त्तते ; यथा—उष्णप्रदेशे प्रसारितार्द्रवासः शीघ्रमेव शुष्यति। उक्तविपरीतं निरुपक्रमम्, यथा—तदेवार्द्रवासः संवर्तितम् अनुष्णदेशे चिरेण शुष्यति। तस्मिन् द्विविधे कर्मणि यः संयमं करोति—किं मम कर्म शीघ्रविपाकम्, चिरविपाकं वा, एवं ध्यानदाढर्यादपरान्तज्ञानमस्योत्पद्यते। अपरान्तः शरीरवियोगः, तस्मिन् ज्ञानम् अमुष्मिन् काले अमुष्मिन् देशे मम शरीरवियोगो भविष्यतीति निःसंशयं

❀ सूत्रपाठविचारो भूमिकायां द्रष्टव्यः। † तस्मिन् तस्मिन् काये (पाठा०)
* अत्र केचित् 'एतेन शब्दाद्यन्तर्धानमुक्तम्' इति सूत्रं कल्पयन्ति, तदिदं युक्तं न वेति भूमिकायां विचारितम्। () फलजननायोपक्रमेण (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जानाति। अरिष्टेभ्यो वा—अरिष्टानि त्रिविधानि, आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकानि। तत्राध्यात्मिकानि—पिहितकरणः कोष्ठचस्य वायोर्घोषं न शृणोतीत्येवमादीनि। आधिभौतिकानि—अकस्माद् विकृतपुरुषदर्शनादीनि। आधिदैविकानि—अकाण्डे एव द्रष्टुमशक्यस्वर्गादिपदार्थदर्शनादीनि, तेभ्यः शरीरवियोगकालं जानाति। यद्यपि अयोगिनामप्यरिष्टेभ्यः प्रायेण तज्ज्ञानमुत्पद्यते, तथापि तेषां सामान्याकारेण तत् संशयरूपं, योगिनां पुर्नानियतदेशकालतया प्रत्यक्षवदव्यभिचारि ॥ २२ ॥

परिकर्मनिष्पादिताः सिद्धीः प्रतिपादयितुमाह—

मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥

मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षासु यो विहितः ()संयमस्तद्बलानि तासां मैत्र्यादीनां सम्बन्धीनि प्रादुर्भवन्ति ; मैत्री-करुणा-मुदितोपेक्षास्तथास्य प्रकर्षं गच्छन्ति यथा सर्वस्य मित्रत्वादिकम् अयं प्रतिपद्यते❀ ॥ २३ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥

हस्त्यादिसम्बन्धिषु बलेषु कृतसंयमस्य तद्बलानि हस्त्यादिबलाविर्भवन्ति। तदयमर्थः—यस्मिन् हस्तिबले वायुवेगे सिंहवीर्य्ये वा तन्मयीभावेन अयं संयमं करोति तत्त सामर्थ्ययुक्तं सत्त्वमस्य प्रादुर्भवतीत्यर्थः* ॥ २४ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्टज्ञानम् ॥ २५ ॥

प्रवृत्तिर्विषयवती ज्योतिष्मती च प्रागुक्ता (१।३५-३६) तस्या य आलोकः सात्त्विकप्रकाशः तस्य निखिलेषु विषयेषु न्यासात् तद्वासितानां विषयाणां भावनातः

() विहितसंयमस्तस्य (पाठा०)। ❀ संपद्यते (पाठा०)। * तत् सर्वं सामर्थ्ययुक्तत्वात् सर्वमस्येति (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्तः-करणेषु इन्द्रियेषु च प्रकृष्टशक्तिमापन्नेषु सुसूक्ष्मस्य परमाण्वादेः, व्यवहितस्य भूम्यन्तर्गतस्य निधानादेः, विप्रकृष्टस्य मेर्वपरपार्श्ववर्त्तिनो †रसायनादेर्ज्ञानमुत्पद्यते ॥२५॥

एतत्समानवृत्तान्तसिद्ध्यन्तरमाह—

भुवनज्ञानं सूर्य्ये संयमात् ॥ २६ ॥

सूर्य्ये प्रकाशमये‡ यः संयमं करोति तस्य सप्तभू र्भवःस्वःप्रभृतिषु लोकेषु यानि भुवनानि तत्तत्सन्निवेशभाञ्जि ()स्थानानि, तेषु यथावदस्य ज्ञानमुत्पद्यते। पूर्वस्मिन् सूत्रे सात्त्विकप्रकाश आलम्बनतयोक्तः, इह तु भौतिक इति विशेषः ॥२६॥

भौतिकप्रकाशान्तरालम्बनद्वारेण सिद्ध्यन्तरमाह—

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥

ताराणां ज्योतिषां यो व्यूहो विशिष्टः सन्निवेशस्तस्य *चन्द्रे कृतसंयमस्य ज्ञानमुत्पद्यते। सूर्य्यप्रकाशेन हततेजस्कत्वात्ताराणां सूर्य्यसंयमात्तज्ज्ञानं न शक्यं भवितुमर्हतीति पृथगुपायोऽभिहितः ॥ २७ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥२८॥

ध्रुवे निश्चले ज्योतिषां प्रधाने कृतसंयमस्य तासां ताराणां या गतिः प्रत्येकं नियतकाला नियतदेशा च, तस्या ज्ञानमुत्पद्यते, इयं तारा, अयं ग्रहः इयता कालेनामुं राशिम् इदं नक्षत्रं यास्यतीति सर्वं जानाति। इदं कालज्ञानस्य फलमुक्तं भवति ॥ २८ ॥

बाह्याः सिद्धीः प्रतिपाद्य अन्तराः सिद्धीः प्रतिपादयितुमुपक्रमते—

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २९ ॥

शरीरमध्यवर्त्ति नाभिसंज्ञकं यत् षोड़शारं चक्रं तस्मिन् कृतसंयमस्य योगिनः

† रसातलादेः (पाठा०)। ‡ सूर्ये प्रकाशसंयमाय (पाठा०); सूर्यप्रकाशसमये इति पाठान्तरं तु असाधु। () पुराणि (पाठा०) * तस्मिन् चन्द्रे (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कायगतो व्यूहो विशिष्टरस-मल-धातु-नाड्यादीनामवस्थानं, तत्र ज्ञानमुत्पद्यते। इदमुक्तं भवति--नाभिचक्रं शरीरमध्यवर्त्ति सर्वतः प्रसृतानां नाड्यादीनां मूलभूतम्, अतस्तत्र कृतावधानस्य समग्रसन्निवेशो यथावद् आभाति ॥ २९ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह--

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३० ॥

कण्ठे गले कूपः कण्ठकूपः, जिह्वामूले ❀जिह्वातन्तोरधस्तात् कूप इव कूपो गर्त्ताकारप्रदेशः, प्राणादेर्यत्सम्पर्कात् क्षुत्पिपासादयः प्रादुर्भवन्ति, तस्मिन् कृतसंयमस्य योगिनः क्षुत्पिपासादयो निवर्त्तन्ते ; घण्टिकाधस्तात् स्रोतसा धार्य्यमाणे तस्मिन् भाविते भवत्येवंविधा सिद्धिः ॥ ३० ॥

सिद्ध्यन्तरमाह--

कूर्मनाड्यां स्थैर्य्यम् ॥ ३१ ॥

कण्ठकूपस्याधस्ताद् या कूर्माख्या नाडी तस्यां कृतसंयमस्य चेतसः स्थैर्य्यमुत्पद्यते, तत्स्थानमनुप्रविष्टस्य चञ्चलता न भवतीत्यर्थः, यदि वा--कायस्य* स्थैर्य्यमुत्पद्यते न केनचित् स्पन्दयितुं शक्यत इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

सिद्ध्यन्तरमाह--

मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३२ ॥

शिरःकपाले ब्रह्मरन्ध्राख्ये छिद्रे प्रकाशाधारत्वाज् ज्योतिषि; यथा गृहाभ्यन्तरस्थस्य मणेः प्रसरन्ती प्रभा कुञ्चिताकारेव† सर्वप्रदेशे सङ्घटते, तथा हृदयस्थः सात्त्विकः प्रकाशः प्रसृतस्तत्र सम्पिण्डितत्वं भजते। तत्र कृतसंयमस्य ये द्यावापृथिव्योरन्तरालवर्तिनः सिद्धा दिव्याः पुरुषाः, तेषामितरप्राणिभिरदृश्यानां, तस्य दर्शनं भवति, तान् पश्यति तैश्च स सम्भाषत() इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

❀ चञ्चोरधस्तात् (पाठा०), जिह्वातोऽधस्तात् (पाठा०)। * काये (पाठा०)। † कुञ्चिकाविवरप्रदेशे। () संभाष्यत इति अपपाठः।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 4127

सर्वज्ञत्व उपायमाह—

प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥३३॥

निमित्तानपेक्षं मनोमात्रजन्यम् अविसंवादकं []प्रागुत्पद्यमानं ज्ञानं प्रतिभा, तस्यां संयमे क्रियमाणे प्रातिभं विवेकख्यातेः पूर्वभावि तारकं ज्ञानमुदेति ; यथा उदेष्यतः सवितुः पूर्वं प्रभा प्रादुर्भवति, तद्वद् विवेकख्यातेः पूर्वं तारकं सर्वविषयं ज्ञानमुत्पद्यते, तस्मिन् सति संयमान्तरानपेक्षः सर्वं जानातीत्यर्थः ॥३३॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

हृदये चित्तसंवित् ॥ ३४ ॥

हृदयं शरीरस्य प्रदेशविशेषः, तस्मिन्नधोमुखस्वल्पपुण्डरीकाभ्यन्तरेऽन्तः-करणसत्त्वस्य स्थानं, तत्र कृतसंयमस्य स्व-परचित्तज्ञानमुत्पद्यते; स्वचित्तगताः सर्वा वासनाः, परचित्तगतांश्च रागादीन् जानातीत्यर्थः ॥३४॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

सत्त्व-पुरुषयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थान्यस्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम्* ॥ ३५ ॥

सत्त्वं प्रकाशसुखात्मकः प्राधानिकः परिणामविशेषः, पुरुषो भोक्ता अधिष्ठातृ-रूपः, तयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोर्भोग्य-भोक्तृरूपत्वाद् अचेतनचेतनत्वाच्च भिन्नयोर्यः प्रत्ययस्याविशेषो भेदेनाप्रतिभासनं तस्मात्, सत्त्वस्येव कर्तृताप्रत्ययेन या सुखदुःखसंवित् स भोगः। सत्त्वस्य स्वार्थनैरपेक्ष्येण परार्थः पुरुषार्थनिमित्तः, तस्माद् अन्यो यः स्वार्थः पुरुषस्वरूपमात्रालम्बनः परित्यक्ताहङ्कारसत्त्वे या चिच्छायासंक्रान्तिस्तत्र कृतसंयमस्य पुरुषविषयं ज्ञानमुत्पद्यते, तत्र तदेवं रूपं स्वालम्बनं ज्ञानं सत्त्वनिष्ठं† पुरुषो जानातीत्यर्थः। न पुनः पुरुषो ज्ञाता ज्ञानस्य विषयभावमापद्यते, ज्ञेयत्वापत्तेः, ज्ञातृ-ज्ञेयत्वयोरत्यन्तविरोधात् ॥३५॥

[] द्रागु (पाठा०)। * सूत्रसमीक्षा पूर्वविभावकं (पाठा०) भूमिकायां द्र०।
† सत्त्वनिष्ठः (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्यैव संयमस्य फलमाह—

ततः प्रातिभ-श्रावण-वेदनादर्शास्वाद-वार्ता जायन्ते ॥ ३६ ॥

ततः पुरुषसंयमादभ्यस्यमानाद् व्युत्थितस्यापि ज्ञानानि जायन्ते । तत्र प्रातिभं पूर्वोक्तं ज्ञानं, तस्याविर्भवनात् सूक्ष्मादिकमर्थं पश्यति । श्रावणं श्रोत्रेन्द्रियजं ज्ञानं, तस्माच्च प्रकृष्टं दिव्यं शब्दं जानाति । वेदना स्पर्शेन्द्रियजं ज्ञानं, वेद्यतेऽनयेति कृत्वा तान्त्रिक्या संज्ञया व्यवह्रियते ; तस्माद् दिव्यस्पर्शविषयं ज्ञानं समुपजायते । आदर्शश्चक्षुरिन्द्रियजं ज्ञानम्, आ समन्तात् दृश्यतेऽनुभूयते रूपमनेनेति कृत्वा ; तस्य प्रकर्षाद्दिव्यं रूपज्ञानमुत्पद्यते । आस्वादो रसनेन्द्रियजं ज्ञानम्, आस्वाद्यतेऽनेनेति कृत्वा ; तस्मिन् प्रकृष्टे दिव्ये *रससंविदुपजायते । वार्त्ता गन्धसंवित्, वृत्तिशब्देन तान्त्रिक्या परिभाषया घ्राणेन्द्रियमुच्यते, वर्त्तते गन्धविषये इति वृत्तेर्घ्राणेन्द्रियाज् जाता वार्त्ता गन्धसंवित्, तस्यां प्रकृष्यमाणायां दिव्यगन्धोऽनुभूयते ॥३६॥

एतेषां फलविशेषाणां †विशेषविभागमाह—

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३७ ॥

ते प्राक् प्रतिपादिताः फलविशेषाः, समाधेः प्रकर्षे ‡उपसर्गा उपद्रवा विघ्नाः, तत्र ()हर्ष-स्मयादिकरणेन समाधिः शिथिलीभवति । व्युत्थाने तु पुनर्व्यवहारदशायां विशिष्टफलदायकत्वात् सिद्धयो भवन्ति ॥३७॥

सिद्ध्यन्तरमाह—

बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥ ३८ ॥

व्यापकत्वादात्म-चित्तयोर्नियतकर्मवशादेव शरीरान्तर्गतयोरेव भोक्तृभोग्यभावेन यत् संवेदनमुपजायते स एव शरीरबन्ध इत्युच्यते, तद् यदा समाधिवशाद् बन्धकारणं धर्माधर्माख्यं शिथिलं भवति तानवमापद्यते । चित्तस्य च योऽसौ

---

* दिव्यरससंवित् (पाठा०) । † विषयविभागमाह (पाठा०) । ‡ प्रकर्षं गच्छतः....विघ्नकारिणः (पाठा०) । () हर्षं विस्मयादि (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रचारो हृदयप्रवेशादिन्द्रियद्वारेण विषयाभिमुख्येन प्रसरः तस्य संवेदनं ज्ञानम्—इयं चित्तवहा नाड़ी, अनया चित्तं वहति, इयं च ०रस-प्राणादिवहाभ्यो नाडीभ्यो विलक्षणेति—स्व-परशरीरयो र्यदा सञ्चारं जानाति तदा परकीयं मृतं जीवच्छरीरं वा चित्तसञ्चारद्वारेण प्रविशति ; चित्तञ्च परशरीरे प्रविशदिन्द्रियाण्यपि अनुवर्त्तन्ते मधुकरराजमिव मक्षिकाः। अथ परशरीरप्रविष्टो योगी स्वशरीरवत् तेन सर्वं ॐ व्यवहरति; यतो व्यापकयोश्चित्त-पुरुषयोर्भोगसङ्कोचे कारणं कर्म, तच् चेत् समाधिना क्षिप्तं, तदा स्वातन्त्र्यात् सर्वत्रैव भोगनिष्पत्तिः ॥ ३८ ॥

सिद्धचन्तरमाह—

उदानजयाज्जल-पङ्क-कण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३९ ॥

समस्तानामिन्द्रियाणां तुषज्वालावद् या युगपदुत्थिता वृत्तिः सा जीवनशब्दवाच्या; तस्याः क्रियाभेदात् प्राणापानादिसंज्ञाभिर्व्यपदेशः। तत्र हृदयान्मुखनासिकाद्वारेण वायोः प्रायणात् प्राण इत्युच्यते। नाभिदेशात् पादाङ्गुष्ठपर्य्यन्तमपनयनादपानः। नाभिदेशं परिवेष्ट्य समन्ताद् नयनात् समानः। कृकाटिकादेशादाशिरोवृत्तेरुन्नयनादुदानः। व्याप्य नयनात् सर्वशरीरव्यापी व्यानः। तत्र उदानस्य संयमद्वारेण जयादितरेषां ‡मूलनिरोधादूर्ध्वगतित्वेन जले महानद्यादौ महति वा कर्दमे तीक्ष्णेषु कण्टकेषु वा न ()मज्जति इति, लघुत्वात्तूलपिण्डवज्जलादौ मज्जितोऽप्युद्गच्छतीत्यर्थः ॥ ३९ ॥

सिद्धचन्तरमाह—

समानजयात् प्रज्वलनम्* ॥ ४१ ॥

अग्निमावेष्ट्य व्यवस्थितस्य समानाख्यस्य वायोर्जयात् संयमेन वशीकाराद् निरावरणस्याग्नेरू[]द्र्ध्वत्वात्तेजसा प्रज्वलन्निव योगी प्रतिभाति ॥ ४० ॥

० रसेति क्वचिन्नास्ति। ॐ सर्वमिति क्वचिन्नास्ति। ‡ वायूनां निरोधात् (पाठा०)। () न सज्जतेऽतिलघुत्वात् (पाठा०)। * सूत्रपाठविचारो भूमिकायां द्र०। [] उद्भूतत्वात् (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिद्धयन्तरमाह—

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥ ४१ ॥

श्रोत्रं शब्दग्राहकमाहङ्कारिकमिन्द्रियम्, आकाशं व्योम, शब्दतन्मात्रकार्य्यं, तयोः सम्बन्धो देश‡देशिभावलक्षणः, तस्मिन् कृतसंयमस्य योगिनो दिव्यं श्रोत्रं प्रवर्त्तते, युगपत् सूक्ष्म-व्यवहित-विप्रकृष्टशब्दग्रहणसमर्थं भवतीत्यर्थः ॥ ४१ ॥

सिद्धयन्तरमाह—

कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्ते-श्चाकाशगमनम् ॥ ४२ ॥

कायः पाञ्चभौतिकं शरीरं, तस्याकाशेनावकाशदायकेन,※ यः सम्बन्धस्तत्र संयमं विधाय लघुनि तूलादौ समापत्तिं* तन्मयीभावलक्षणां विधाय प्राप्तातिलघुभावो योगी प्रथमं यथारुचि जले सञ्चरणक्रमेणोर्णनाभतन्तुजालेन सञ्चरमाण आदित्यरश्मिभिश्च विहरन् यथेष्टमाकाशेन गच्छति ॥ ४२ ॥

सिद्धयन्तरमाह—

बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा, ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥४३॥

शरीराद् वहिर्या मनसः शरीरनैरपेक्ष्येण वृत्तिः, सा महाविदेहा नाम †विगताहङ्कारकार्य्यवेगा उच्यते। ततस्तस्यां कृतात् संयमात्, प्रकाशावरणक्षयः, सात्त्विकस्य चित्तस्य यः प्रकाशः, तस्य यदावरणं क्लेशकर्मादि, तस्य क्षयः प्रविलयो भवति। अयमर्थः—शरीराहङ्कारे सति या मनसो वहिर्वृत्तिः सा कल्पिता इत्युच्यते। यदा पुनः शरीरादहङ्कारभावं परित्यज्य स्वातन्त्र्येण मनसो वृत्तिः सा अकल्पिता, तस्यां संयमाद् योगिनः सर्वे चित्तमलाः क्षीयन्ते ॥ ४३ ॥

तदेवं पूर्वान्तविषया ०अपरान्तविषया मध्यभावाश्च सिद्धीः प्रतिपाद्य अनन्तरं

‡ देशादिभाग० (पाठा०)। ※ दानाद् यः (पाठा०)। * समापत्तिस्तन्मयीभावलक्षणा, तां च (पाठा०)। † विगतशरीराहंकारदार्ढ्यद्वारेण (पाठा०)। ० परान्तविषया (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भुवनज्ञानादिरूपा वाह्याः, कायव्यूहादिरूपा आभ्यन्तराः, परिकर्मनिष्पन्नभूताश्च 'मैत्र्यादिषु बलानी' त्येवमाद्याः समाध्युपयोगिनीश्चान्तःकरण-बहिःकरणलक्षणेन्द्रिय-भवाः, प्राणादिवायुभवाश्च सिद्धीश्चित्तदार्ढ्याय समाधेश्चाश्वासोत्पत्तये प्रतिपाद्य इदानीं स्वदर्शनोपयोगि-सबीजनिर्बीजसमाधिसिद्धये विविधोपायप्रदर्शनायाह—

स्थूल-स्वरूप-सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूतजयः ।। ४४ ॥

पञ्चानां पृथिव्यादीनां भूतानां ये पञ्च अवस्थाविशेषरूपा धर्माः स्थूलत्वादयः, तत्र कृतसंयमस्य भूतजयो भवति, भूतान्यस्य वश्यानि भवन्तीत्यर्थः। तथा हि—भूतानां परिदृश्यमानं विशिष्टाकारवत् *स्थूलरूपम् ; स्वरूपञ्चैषां यथाक्रमं कार्य्यं गन्ध-स्नेहोष्णता-प्रेरणावकाशदानलक्षणम् ; सूक्ष्मञ्च यथाक्रमं भूतानां कारणभेदेन[] व्यवस्थितानि गन्धादितन्मात्राणि; अन्वयिनो गुणाः प्रकाश-प्रवृत्ति-स्थितिरूपतया सर्वत्रैव अन्वयित्वेन समुपलभ्यन्ते ; अर्थवत्त्वं तेषु एव गुणेषु भोगापवर्गसम्पादनाख्या शक्तिः ; तदेवं भूतेषु पञ्चसु उक्तधर्म-†लक्षणावस्थाभिन्नेषु प्रत्यवस्थं संयमं कुर्वन् योगी भूतजयी भवति। तद्यथा—प्रथमं स्थूलरूपे संयमं विधाय तदनु ()स्वरूपे, इत्येवं-क्रमेण तस्य कृतसंयमस्य (:)सङ्कल्पानुविधायिन्यो वत्सानुसारिण्य इव गावो भूतप्रकृतयो भवन्तीत्यर्थः ॥४४॥

तस्यैव भूतजयस्य फलमाह—

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत् तद्धर्मानभिघातश्च ॥४५॥

अणिमा परमाणुरूपतापत्तिः, महिमा महत्त्वं, लघिमा लघुत्वं, तूलपिण्डवल्ल-घुत्वप्राप्तिः, गरिमा गुरुत्वप्राप्तिः, अङ्गुल्यग्रेण चन्द्रादिस्पर्शनशक्तिः, प्राकाम्यम् इच्छानभिघातः, शरीरान्तःकरणेश्वरत्वम् ईशित्वं, सर्वत्र प्रभविष्णुता वशित्वं, सर्वाण्येव भूतानि अनुगामित्वात्तदुक्तं नातिक्रामति। यत्रकामावसायो यस्मिन् विषयेऽस्य कामः स्वेच्छा भवति, तस्मिन् विषये योगिनः अध्यवसायो❃ भवति

* विशिष्टाकारं स्थूलरूपं चैषाम् (पाठा०)। [] कारणत्वेन (पाठा०)। † उक्तलक्षणावस्था (पाठा०)। () सूक्ष्मरूपे (पाठा०)। (:) संकल्पार्थ (पाठा०)। ❃ व्यवसायः (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तं विषयं स्वीकारद्वारेणाभिलाषसमाप्तिपर्य्यन्तं नयतीत्यर्थः ; ते एते अणिमाद्याः समाध्युपयोगिनो भूतजयाद् योगिनः प्रादुर्भवन्ति ; यथा—परमाणुत्वं प्राप्तो वज्रादीनामप्यन्तः प्रविशति ; एवं सर्वत्र योज्यम् । एतेऽणिमादयोऽष्टौ गुणा महासिद्धय उच्यन्ते । कायसम्पद् वक्ष्यमाणा, तां प्राप्नोति । तद्धर्मानभिघातश्च, तस्य कायस्य, ये धर्मा रूपादयः, तेषामनभिघातो नाशो न कुतश्चित् भवति, नास्य रूपमग्निर्दहति, न वायुः शोषयतीत्यादि योज्यम् ॥ ४५ ॥

कायसम्पदमाह—

रूप-लावण्य-बल-वज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ॥४६॥

रूप-लावण्य-बलानि प्रसिद्धानि, वज्रसंहननत्वं वज्रवत् कठिना संहतिरस्य शरीरे भवतीत्यर्थः, इति कायस्य आविर्भूतगुणसम्पत् ॥४६॥

एवं भूतजयमभिधाय *प्राप्तभूमिकायामिन्द्रियजयमाह—

ग्रहण-स्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् इन्द्रियजयः ॥४७॥

ग्रहणमिन्द्रियाणां विषयाभिमुखी वृत्तिः, स्वरूपं सामान्येन प्रकाशकत्वम्,† अस्मिता अहङ्कारानुगमः, अन्वयार्थवत्त्वे पूर्ववत् (३।४४); एतेषाम् इन्द्रियाणामवस्थापञ्चके पूर्ववत् संयमं कृत्वा इन्द्रियजयी भवति ॥४७॥

तस्य फलमाह—

ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥ ४८ ॥

शरीरस्य मनोवदनुत्तम-गतिलाभो मनोजवित्वम् ; कायनिरपेक्षाणाम् इन्द्रियाणां वृत्तिलाभो विकरणभावः ; सर्ववशित्वं प्रधानजयः ; एताः सिद्धयो जितेन्द्रियस्य प्रादुर्भवन्ति ; ताश्चास्मिन् शास्त्रे 'मधुप्रतीका' इत्युच्यन्ते ; यथा मधुन एकदेशोऽपि स्वदते, एवं प्रत्येकमेताः सिद्धयः स्वदन्त इति मधुप्रतीकाः ॥४८॥

---

* प्राप्तभूमिकाविशेषस्य (पाठा०), प्राप्तभूमिकस्य (पाठा०)।
† प्रकाशकम् (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रियजयमभिधाय अन्तःकरणजयमाह—

सत्त्व-पुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वञ्च ॥ ४९ ॥

तस्मिन् बुद्धेः() सात्त्विके परिणामे कृतसंयमस्य या सत्त्व-पुरुषयोरुत्पद्यते विवेकख्यातिः॥ गुणानां कर्त्तृत्वाभिमान-शिथिलीभावरूपा[] तन्माहात्म्यात् तत्रैव स्थितस्य योगिनः सर्वाधिष्ठातृत्वं सर्वकर्त्तृत्वं च समाधे‡र्भवति। सर्वेषां गुणपरिणामानां भावानां स्वामिवदाक्रमणं सर्वाधिष्ठातृत्वम्; तेषामेव च शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मित्वेनावस्थितानां यथावद् विवेकज्ञानं सर्वज्ञातृत्वमेव। एषाञ्चास्मिन् शास्त्रेऽपरस्यां० वशीकारसंज्ञायां प्राप्तायां विशोका नाम सिद्धिरित्युच्यते ॥ ४९ ॥

क्रमेण भूमिकान्तरमाह—

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ ५० ॥

तस्यामपि विशोकायां सिद्धौ यदा वैराग्यमुत्पद्यते योगिनस्तदा तस्माद्दोषाणां रागादीनां, यद्बीजमविद्यादयः, तस्य क्षये निर्मूलने, कैवल्यमात्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिः पुरुषस्य गुणानामधिकारपरिसमाप्तौ स्वरूपप्रतिष्ठत्वम्* ॥ ५० ॥

तस्मिन्नेव समाधौ स्थित्युपायमाह—

स्वाम्युपनिमन्त्रणे सङ्ग-स्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात्† ॥ ५१ ॥

चत्वारो योगिनो भवन्ति; तत्राभ्यासवान् प्रवृत्तमात्रज्योतिः प्रथमः। ऋतंभरप्रज्ञो-:- द्वितीयः। भूतेन्द्रियजयी तृतीयः। अतिक्रान्तभावनीयश्चतुर्थः। तस्य चतुर्थस्य समाधेः प्राप्तसप्तविधभूमिप्रत्ययस्यान्त्यां मधुमतीसंज्ञां भूमिकां

() शुद्धे (पाठा०)। ॥ सा अन्यताख्यातिः (पाठा०)। [] भावरूपात् (पाठा०)। * स्वरूपनिष्ठत्वम् (पाठा०:)। ‡ समाधिः (पाठा०)। ० परस्यां (पाठा०)। -:- कृतान्तर प्रज्ञः (पाठा०)। † सूत्रपाठविचारो भूमिकायां द्र०।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साक्षात्कुर्वतः स्वामिनो देवा उपनिमन्त्रयितारो भवन्ति, दिव्यस्त्रो()वसनादिकमुपढौकयन्तीति तस्मिन्नुपनिमन्त्रणे न अनेन सङ्गः कर्त्तव्यः, नापि स्मयः। सङ्गतिकरणे पुनर्विषयभोगे पतति, स्मयकरणे कृतकृत्यमात्मानं मन्यमानो न समाधौ उत्साहः, अतः सङ्ग-स्मययोस्तेन वर्जनं कर्त्तव्यम् ॥ ५१ ॥

अस्यामेव फलभूतायां विवेकख्यातौ पूर्वोक्तसंयमव्यतिरिक्तमुपायान्तरमाह—

क्षण-तत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५२ ॥

क्षणः सर्वान्तकालावयवः, यस्य कलाः प्रभवितुं न शक्यन्ते, तथाविधानां कालक्षणानां यः क्रमः पौर्वापर्य्येण परिणामः, तत्रः संयमात् प्रागुक्तं विवेकजं ज्ञान०-मुत्पद्यते। अयमर्थः—अयं कालक्षणोऽमुष्मात् कालक्षणादुत्तरः, अयमस्मात् पूर्वः, इत्येवंविधे क्रमे कृतसंयमस्यात्यन्तसूक्ष्मेऽपि क्षणक्रमे यदा भवति साक्षात्कारः, तदा अन्यदपि सूक्ष्मं महदादिसाक्षात्करोतीति विवेकज्ञानोत्पत्तिः ॥ ५२ ॥

अस्यैव संयमस्य विषयविवेकोपक्षेपणायाह‡—

जाति-लक्षण-देशैरन्यतानवच्छेदात् तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥ ५३ ॥

पदार्थानां भेदहेतवो जाति-लक्षण-देशा भवन्ति। क्वचिद्भेदहेतुर्जातिः, यथा—गौरियं, महिषोऽयमिति। जात्या तुल्ययोर्लक्षणं भेदहेतुः, इयं कर्बुरा, इयम् अरुणेति। जात्या लक्षणेनाभिन्नयोर्भेदहेतुर्देशो द्रष्टव्यः; यथा—तुल्यप्रमाणयोरामलकयोर्भिन्नदेशस्थितयोर्यत्र पुनर्भेदोऽवधारयितुं न शक्यते, यथा—एकदेशस्थितयोः शुक्लयोः पार्थिवयोः परमाण्वोः, तथाविधे विषये भेदाय कृतसंयमस्य भेदेन ज्ञानमुत्पद्यते; तदा तदभ्यासात् सूक्ष्माण्यपि तत्त्वानि []भेदेन प्रतिपद्यते। एतदुक्तं

() रसायनादिकं (पाठा०)। ० विवेकज्ञानमिति आपपाठः। ‡ विवेकोपयोगमाह (पाठा०)। []तत्त्वानि भेदेन ज्ञानमुत्पद्यते, तदभ्यासात सूक्ष्माण्यपि तत्त्वानि भेदेन प्रतिपद्यन्ते (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भवति—यत्र केनचिदुपायेन भेदो नावधारयितुं शक्यः, तत्र संयमाद्भवत्येव भेदप्रतिपत्तिः() ॥ ५३ ॥

सूक्ष्माणां तत्त्वानामुक्तस्य विवेकजन्यज्ञानस्य संज्ञां† विषयस्वाभाव्यं व्याख्यातुमाह—

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमञ्चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५४ ॥

उक्तसंयमबलादेव अन्त्यायां भूमिकायामुत्पन्नं ज्ञानं तारकमिति, तारयति अगाधात् संसारसागराद् योगिनम् इत्यन्वर्थिक्या संज्ञया तारकमित्युच्यते । अस्य विषयमाह—सर्वविषयमिति । सर्वाणि तत्त्वानि महदादीनि विषयोऽस्येति सर्वविषयम् । स्वभावश्च अस्य सर्वथाविषयत्वं सर्वाभिरवस्थाभिः स्थूल-सूक्ष्मादिभेदेन तैस्तैः परिणामैः सर्वेण प्रकारेण अवस्थितानि तत्त्वानि विषयोऽस्येति सर्वथाविषयम् । स्वभावान्तरमाह अक्रमञ्चेति । निःशेषनानावस्थापरिणतद्व्येकभावग्रहणे* नास्य क्रमो विद्यत इति अक्रमं, सर्वं करतलामलकवद् युगपत् पश्यतीत्यर्थः ॥ ५४ ॥

अस्माच्च विवेकजात् तारकाख्याज् ज्ञानात् किं भवतीत्याह—

सत्त्व-पुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् ॥ ५५ ॥

सत्त्व-पुरुषावुक्तलक्षणौ, (२।६, २।१८, २।२०) तयोः शुद्धिसाम्यं सत्त्वस्य सर्वकर्तृत्वाभिमाननिवृत्त्या स्वकारणानुप्रवेशः शुद्धिः, पुरुषस्य शद्धिरुपचरितभोगाभावः, इति द्वयोः समानायां शुद्धौ पुरुस्य कैवल्यमुत्पद्यते, मोक्षो भवतीत्यर्थः ॥५५॥

तदेवमन्तरङ्गं योगाङ्गत्रयमभिधाय, तस्य च संयमसंज्ञां कृत्वा; संयमस्य विषयप्रदर्शनार्थं परिणामत्रयमुपपाद्य, संयमबलोत्पद्यमानाः पूर्वान्तपरान्त-मध्यभवाः सिद्धीरुपदर्श्य, समाध्यभ्यासोपपत्तये❀ बाह्या भुवनज्ञानादिरूपा आभ्यन्तराश्च

() भेदप्रतीतिः (पाठा०) । † संज्ञाविषयस्वाभाव्य (पाठा०) ।
* त्र्यात्मकभाव (पाठा०) । ❀ समाध्याश्वासोत्पत्तये (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कायव्यूहज्ञानादिरूपाः प्रदर्श्य, समाध्युपयोगाय इन्द्रियप्राणजयादिपूर्विकाः प्रदर्श्य,† परमपुरुषार्थसिद्धये यथाक्रममवस्थासहितभूतजयेन्द्रियसत्त्वजयोद्भवाश्च व्याख्याय, विवेकज्ञानोपपत्तये ()तांस्तानुपायानुपन्यस्य, तारकस्य सर्वसमाध्यवस्थापर्य्यन्तभवस्य स्वरूपमभिधाय, तत्समापत्तेः कृताधिकारस्य चित्तसत्त्वस्य स्वकारणानुप्रवेशात् कैवल्यमुपपद्यत इत्यभिहितम् इति निर्णीतो विभूतिपादस्तृतीयः ।

इति धारेश्वरभोजदेवविरचितायां राजमार्त्तण्डाभिधायां पातञ्जलवृत्तौ विभूतिपादस्तृतीयः ।

—:०:—

अथ कैवल्यपादः ।

यदाज्ञयैव कैवल्यं विनोपायैः प्रजायते ।
तमेकमजमीशानं चिदानन्दमयं स्तुमः ॥

इदानीं विप्रतिपत्तिसमुत्थभ्रान्तिनिराकरणेन युक्त्या कैवल्यस्वरूपज्ञानाय* कैवल्यपादोऽयमारभ्यते ।

तत्र याः पूर्वमुक्ताः सिद्धयस्तासां नानाविध(:)जन्मादिकारणप्रतिपादनद्वारेणेदं बोधयति—मदीया []एताः सिद्धयः ताः सर्वाः पूर्वजन्माभ्यस्तसमाधिबलाज् जन्मादिनिमित्तमात्रत्वेनाश्रित्य प्रवर्त्तन्ते । ततश्चानेकभवसाध्यस्य समाधेर्न क्षतिरस्तीत्याश्वासोत्पादनाय‡ समाधिसिद्धेश्च प्राधान्यख्यापनार्थं कैवल्योपयोगार्थमाह—

जन्मौषधि-मन्त्र-तपः-समाधिजाः सिद्धयः ॥ १ ॥

काश्चन जन्मनिमित्ता एव सिद्धयः ; यथा—पक्ष्यादीनामाकाशे गमनादयः ;

---

† प्रदर्श्येति क्वचिन्न पठ्यते । () तासामुपायानां (पाठा०) । * ज्ञापनाय (पाठा०) । (:) जात्यादिकारण (पाठा०) । [] यदिवा या एताः सिद्धयस्ताः (पाठा०) । ‡ विश्वासोत्पादनाय (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथा वा—कपिलमहर्षिप्रभृतीनां जन्मसमनन्तरमेवोपजायमाना ज्ञानादयः सांसिद्धिका गुणाः। ओषधिसिद्धयो यथा—पारदादिरसायनाद्युपयोगात्। मन्त्रसिद्धिर्यथा—मन्त्रजपात् केषाञ्चिदाकाशगमनादिः। तपःसिद्धिर्यथा—विश्वामित्रादीनाम्। समाधिसिद्धिः प्राक् प्रतिपादिता। एताः सिद्धयः पूर्वजन्मक्षयितक्लेशानामेवोपजायन्ते; तस्मात् समाधिसिद्धाविव अन्यासां सिद्धीनां समाधिरेव जन्मान्तराभ्यस्तः कारणं, मन्त्रादीनि निमित्तमात्राणि ॥ १ ॥

ननु नन्दीश्वरादिकानां जात्यादिपरिणामोऽस्मिन्नेव जन्मनि दृश्यते, तत् कथं जन्मनि() जन्मान्तराभ्यस्तस्य समाधेः कारणत्वमुच्यत इत्याशङ्क्याह—

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥

योऽयमिहैव जन्मनि नन्दीश्वरादीनां जात्यादिपरिणामः स प्रकृत्यापूरात्, पाश्चात्त्या एव हि प्रकृतयोऽमुष्मिन् जन्मनि विकारेणापूरयन्ति* जात्यादिद्वारेण परिणमन्ति† ॥ २ ॥

ननु धर्माधर्मादयस्तत्र क्रियमाणा उपलभ्यन्ते, तत् कथं प्रकृतीनामापूरकत्वम्(:) इत्याह—

निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां, वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥ ३ ॥

निमित्तं धर्मादि, तत् प्रकृतीनामर्थान्तरपरिणामे न प्रयोजकं, न हि कार्य्येण कारणं प्रवर्त्तते। कुत्र तर्हि तस्य धर्मादेर्व्यापार इत्याह—वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्। ततस्तस्मादनुष्ठीयमानाद् धर्माद् वरणमावरणकम् अधर्मादि, तस्यैव विरोधित्वाद् भेदः क्षयः क्रियते, तस्मिन् प्रतिबन्धे क्षीणे प्रकृतयः स्वयमभिमतकार्य्याय प्रभवन्ति। दृष्टान्तमाह—क्षेत्रिकवत्। यथा क्षेत्रिकः कृषीवलः केदारात् केदारान्तरं जलं निनीषुर्जलप्रतिबन्धकवरणभेदमात्रं करोति, तस्मिन् भिन्ने जलं

() जन्मनीति क्वचिन्न। * विकारानापूरयन्ति (पाठा०)। † जात्यन्तराकारेण परिणामयन्ति (पाठा०); नामरूपजात्यादिद्वारेण परिणामयन्ति (पाठा०)। (:) आपूरकारणत्वम् (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वयमेव प्रसरद्रूपं परिणामं गृह्णाति, न तु जलप्रसरणे तस्य कश्चित् प्रयत्नः&; एवं धर्मादेर्बोद्धव्यम् ॥ ३ ॥

यदा साक्षात्कृततत्त्वस्य योगिनो युगपत् कर्मफलभोगाय आत्मीयनिरतिशय-विभूत्यनुभवाद् युगपदनेकशरीरनिर्मित्सा जायते, तदा कुतस्तानि[] चित्तानि प्रभवन्तीत्याह—

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ ॥

योगिनः स्वयं निर्मितेषु कायेषु यानि चित्तानि तानि मूलकारणाद्, अस्मिता-मात्रादेव तदिच्छया प्रसरन्ति, अग्नेर्विस्फुलिङ्गा इव युगपत् परिणमन्ति ॥४॥

ननु बहूनां चित्तानां भिन्नाभिप्रायत्वान्नैककार्य्यकर्त्तृत्वं स्यादित्याह—

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ५ ॥

तेषाम् अनेकेषां चेतसां प्रवृत्तिभेदे व्यापारनानात्वे एकं योगिनश्चित्तं प्रयोजकं प्रेरकम्, अधिष्ठातृत्वेन, तेन न भिन्नमतत्वम् । अयमर्थः— यथा आत्मीयशरीरे मन श्चक्षुःपाण्यादीनि यथेच्छं प्रेरयति, अधिष्ठातृत्वेन, एवं कार्यान्तरेष्वपीति ॥५॥

जन्मादिप्रभवत्वात् सिद्धीनां चित्तमपि तत्प्रभवं पञ्चविधमेव ; अतो* जन्मादिप्रभवाच्चित्तात् समाधिप्रभवस्य चित्तस्य वैलक्षण्यमाह—

तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥

ध्यानजं समाधिजं यच् चित्तं तत् पञ्चसु मध्ये अनाशयं कर्मवासनारहित-मित्यर्थः ॥६॥

यथा इतरचित्तेभ्यो योगिनश्चित्तं विलक्षणं क्लेशादिरहितं, तथा कर्मापि विलक्षणमित्याह—

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिन स्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ७ ॥

शुभफलदं कर्म यागादि शुक्लम्, अशुभफलदं ब्रह्महत्यादि कृष्णम्, उभय-

& व्यापारः (पाठा०) । [] कुतस्त्यानि (पाठा०) । * ततः (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सङ्कीर्णं शुक्लकृष्णम् । तत्र शुक्लं कर्म विचक्षणानां दान-तपः-स्वाध्यायादिमतां पुरुषाणाम् । कृष्णं कर्म †दानवानाम् । शुक्लकृष्णं मनुष्याणाम् । योगिनान्तु सन्यासवतां त्रिविधकर्मविपरीतं यत् फलत्यागानुसन्धानेनैवानुष्ठानाद् न किञ्चित् फलमारभते ॥ ७ ॥

अस्यैव कर्मणः फलमाह—

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥

इह हि द्विविधा कर्मवासनाः, स्मृतिमात्रफलाः जात्यायुर्भोगफलाश्च । एका ❀तत्र जात्यायुर्भोगफला अनेकजन्मभवा इत्यनेन पूर्वमेव (२।१२–१३) कृतनिर्णयाः । यास्तु स्मृतिमात्रफलाः ताः, ततः कर्मणः, येन कर्मणा यादृक् शरीरमारब्धं देव-मनुष्य-तिर्य्यगादिभेदं,तस्य विपाकस्य, अनुगुणा अनुरूपाः, या वासना; तासामेवा()भिव्यक्तिर्भवति । अयमर्थः—येन कर्मणा पूर्वं देवतादिशरीरमारब्धं, जात्यन्तरशतव्यवधानेन पुनस्तथाविधस्यैव शरीरस्य आरम्भे तदनुरूपा एव स्मृतिफला वासनाः प्रकटीभवन्ति, लोकान्तरेष्वेवार्थेषु तस्य स्मृत्यादयो जायन्ते । इतरास्तु सत्योऽपि अव्यक्तसंज्ञाः तिष्ठन्ति,[] न तस्यां दशायां नरकादिशरीरोद्भवा* वासना व्यक्तिमायान्ति ॥ ८ ॥

आसामेव वासनानां कार्य्यकारणभावानुपपत्तिमाशङ्क्य समर्थयितुमाह—

जाति-देश-कालव्यवहितानामप्यानन्तर्य्यं, स्मृति-संस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ९ ॥

इह नानायोनिषु भ्रमतां संसारिणां काञ्चिद् योनिमनुभूय यदा योन्यन्तरसहस्रव्यवधानेन पुनस्तामेव योनिं प्रतिपद्यते, तदा तस्यां पुर्वानुभूतायां योनौ

† नारकिणाम् (पाठा०), नारकाणाम् (पाठा०) । ❀ तत्र जात्यायुर्भोगफलेति क्वचिन्न पठ्यते । () तासामेव तस्मादभिव्यक्तिः (पाठा०) । [] इतरास्तु ताभ्यो न्यग्भूतास्तिष्ठन्ति (पाठा०) । * शरीरस्योपभोगभवा (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथाविधशरीरादिव्यञ्जकापेक्षया वासना याः प्रकटीभूता आसन्, तास्तथाविधव्यञ्जकाभावात्तिरोहिताः पुनस्तथाविधव्यञ्जकशरीरादिलाभे प्रकटीभवन्ति; जाति-देश-कालव्यवधानेऽपि तासां †स्वानुभूतस्मृत्यादिफलसाधने आनन्तर्य्यं नैरन्तर्य्यम्। कुतः? स्मृति-संस्कारयोरेकरूपत्वात्। तथा हि––अनुष्ठीयमानात् कर्मणश्चित्तसत्त्वे वासनारूपः() संस्कारः समुत्पद्यते, स च स्वर्गनरकादीनां फलानाञ्चाङ्कुरीभावः, कर्मणां वा यागादीनां शक्तिरूपतया अवस्थानं, कर्त्तुर्वा तथाविधभोग्य[]-भोक्तृत्वरूपं सामर्थ्यम्। संस्कारात् स्मृतिः, स्मृतेश्च सुख-दुःखोपभोगः, तदनुभवाच्च पुनरपि संस्कार- स्मृत्यादयः। एवं च यस्य स्मृति-संस्कारादयो भिन्नाः, तस्यानन्तर्य्याभावे दुर्लभः कार्य्यकारणभावः; अस्माकं तु यदानुभव एव संस्कारीभवति, संस्कारश्च स्मृतिरूपतया परिणमते, तदैकस्यैव चित्तस्यानुसन्धातृत्वेन स्थितत्वात् न कार्य्यकारणभावो दुर्घटः॥ ९॥

भवत्वानन्तर्य्यं कार्य्यकारणभावश्च वासनानां, यदा तु प्रथममेवानुभवः प्रवर्त्तते, तदा किं वासनानिमित्त उत निर्निमित्त इति शङ्कां व्यपनेतुमाह––

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात्॥ १०॥

तासां वासनानाम्, अनादित्वं न विद्यते आदिर्यस्य तस्य भावस्तत्त्वं, तासामादिर्नास्तीत्यर्थः; कुत इति? आशिषो नित्यत्वात्––येयमाशीर्महामोहरूपा, सदैव सुखसाधनानि मे भूयासुः, मा कदाचन तैः मे वियोगो भूदिति यः सङ्कल्पविशेषो वासनानां कारणं, तस्य नित्यत्वाद् अनादित्वमित्यर्थः। एतदुक्तं भवति––कारणस्य सन्निहितत्वाद् अनुभवसंस्कारादीनां कार्य्याणां प्रवृत्तिः केन वार्य्यते? अनुभव-संस्कारानुविद्धं सङ्कोच-विकाशधर्मि चित्तं *तत्तदभिव्यञ्जकलाभात् तत्तत्फलरूपतया परिणमत इत्यर्थः॥ १०॥

† स्वानुरूप (पाठा०)। () वासनानुरूपः (पाठा०)। [] भोग (पाठा०)। * व्यञ्जकविपाकलाभात् (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तासामानन्त्याद् हानं कथं भवतीत्याशङ्क्य हानोपायमाह—

हेतु-फलाश्रयालम्बनैः सङ्गृहीतत्वाद् एषामभावे तदभावः ॥ ११ ॥

वासनानामनन्तरानुभवो हेतुः, तस्याप्यनुभवस्य रागादयः, तेषामविद्येति साक्षात् पारम्पर्य्येण हेतुः ; फलं शरीरादि स्मृत्यादि च ; आश्रयो बुद्धिः ; आलम्बनं यदेवानुभवस्य तदेव वासनानाम् ; अतस्तैर्हेतु-फलाश्रयालम्बनैरनन्तानामपि वासनानां सङ्गृहीतत्वात् ; एषां †हेतूनाम् अभावे ज्ञानयोगाभ्यां दग्धबीजकल्पत्वे विहिते निर्मूलत्वाच्च वासनाः प्ररोहं न यान्ति न कार्य्यमारभन्त इति तासाम् अभावः ॥ ११ ॥

ननु प्रतिक्षणं चित्तस्य ()नश्वरत्वोपलब्धेर्वासनानां तत्फलानाञ्च कार्य्यकारणभावेन युगपद्भावित्वाद् भेदे कथमेकत्वमित्याशङ्क्य एकत्वसमर्थनायाह—

अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद् धर्माणाम्‡ ॥ १२ ॥

इह अत्यन्तमसतां भावानामुत्पत्तिर्न युक्तिमती, तेषां सत्त्वसम्बन्धायोगात् ; न हि शशविषाणादीनां क्वचिदपि सत्त्वसम्बन्धो दृष्टः, निरुपाख्ये च कार्य्ये किमुद्दिश्य कारणानि प्रवर्त्तन्ते ? न ह्यसन्तं विषयमालोच्य कश्चित् प्रवर्त्तते । सतामपि विरोधान्नाभावसम्बन्धोऽस्ति, यत् स्वरूपं लब्धसत्ताकं तत् कथं निरुपाख्यतामभावरूपतां वा भजते न विरुद्धं रूपं स्वीकरोतीत्यर्थः ; तस्मात्सतामभावासम्भवात्, असतां च उत्पत्त्यसम्भवात्तैस्तैर्धर्मैर्विपरिणममानो धर्मी सदैकरूप एवातिष्ठते, धर्मास्तु अधिकत्वेन[] त्रैकालिकत्वेन तत्र व्यवस्थिताः स्वस्मिन्नध्वनि व्यवस्थिता न स्वरूपं त्यजन्ति, वर्त्तमानेऽध्वनि व्यवस्थिताः केवलं भोग्यतां भजन्ते

† हेत्वादीनाम् (पाठा०)। () नश्वरत्वात् तरतमत्वोपलब्धेः (पाठा०); भेदोपलब्धेः (पाठा०)। ‡ सूत्रपाठविचारो भूमिकायां द्र० । [] त्वधिकत्वेन (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तस्माद्धर्मणामतीतानागतादिभेदा※त्तेनैव रूपेण कार्य्य-कारणभावोऽस्मिन् दर्शने प्रतिपद्यते;तस्मादपवर्गपर्य्यन्तमेकमेव चित्तं धर्मितयाऽनुवर्त्तमानं न निह्नोतुं पार्य्यते॥१२॥

ते एते धर्म-धर्मिणः किंरूपा इत्याह—

ते व्यक्त- सूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ १३ ॥

य एते धर्म-धर्मिणः प्रोक्ताः, ते व्यक्त-सूक्ष्मभेदेन व्यवस्थिताः गुणाः सत्त्व-रजस्तमोरूपाः, तदात्मानस्तत्स्वभावाः, तत्परिणामरूपा इत्यर्थः ; यतः सत्त्व-रजस्तमोभिः सुख-दुःख-मोहरूपैः सर्वासां बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नानां भावव्यक्तीनाम् अन्वयानुगमा दृश्यन्ते, यद् यदन्वयि तत्तत् परिणाम*रूपं दृष्टं, यथा घटादयो मृदन्विता मृत्परिणामरूपाः ॥ १३ ॥

यद्येते त्रयो गुणा सर्वत्र मूलकारणं, कथमेको धर्मीति व्यपदेश इत्याशङ्क्याह—

परिणामैकत्वाद् वस्तुतत्त्वम् ॥ १४ ॥

यद्यपि त्रयो गुणाः, तथापि तेषामङ्गाङ्गिभावगमनलक्षणो यः परिणामः क्वचित् सत्त्वमङ्गि क्वचिद्रजः क्वचिच्च तम इत्येवंरूपः,तस्यैकत्वाद्वस्तु[]नस्तत्त्वमेक-मुच्यते ; यथा—इयं पृथिवी, अयं वायुरित्येवमादि ॥ १४ ॥

ननु ज्ञानव्यतिरिक्ते सत्यर्थे वस्त्वेकमनेकं वा वक्तुं युज्यते, यदा च विज्ञानमेव वासनावशात् कार्य्यकारणभावेनावस्थितं तथा तथा प्रतिभाति, तदा कथमेतच्छक्यते वक्तुम् इत्याशङ्क्याह—

वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विविक्तः ()पन्थाः ॥ १५॥

तयोर्ज्ञानार्थ†योर्विविक्तः पन्था विविक्तो मार्गः, देश इति [:]यावत् ; कथम् वस्तुसाम्ये चित्तभेदात् । समाने वस्तुनि स्त्र्यादावुपलभ्यमाने लावण्यादौ‡ नानाप्रमा-

---

※ धर्मणामेवातीतानागताद्यध्वभेदात् (पाठा०)। * परिणामिरूपम् (पाठा०)। [] वस्तुतत्त्वम् (पाठा०)। () सूत्रपाठविचारो भूमिकायां द्र०। एतत् सूत्रादनन्तरं 'न चैकेत्यादि' किमपि सूत्रं पठ्यते ; एतद्विषये भूमिका द्रष्टव्या। † ज्ञानज्ञेययोः (पाठा०)। [:] मार्गो भेद इति यावत् (पाठा०)। ‡ इदं क्वचिन्न पठ्यते।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तृणां चित्तस्य भेदः सुख-दुःख-मोहरूपतया समुपलभ्यते ; तथा हि एकस्यां रूप-लावण्यवत्यां योषिति उपलभ्यमानायां सरागस्य सुखमुत्पद्यते, सपत्न्यास्तद्द्वेषः, परिव्राजकादेर्घृणा—इत्येकस्मिन् वस्तुनि नानाविधचित्तोदयात् कथं चित्तकार्यत्वं वस्तुनः,† एकचित्तकार्य्यत्वे वस्त्वेकरूपतयैवावभासेत;किञ्च, चित्तकार्य्यत्वे वस्तुनो यदीयस्य चित्तस्य तद्वस्तु कार्य्यं, तस्मिन्नर्थान्तरव्यासक्ते तद्वस्तु न किञ्चित् स्यात्, भवत्विति चेन्न, तदेव कथमन्यैर्वहुभिरुपलभ्येत ? उपलभ्यते च, तस्मान्न चित्त-कार्य्यम् ; अथ युगपद् वहुभिः सोऽर्थः क्रियते, तदा वहुनिर्मितस्यार्थस्यैकनिर्मिताद् वैलक्षण्यं स्यात् । यदा तु वैलक्षण्यं नेष्यते, तदा कारणभेदे सति कार्य्यभेदस्याभावे निर्हेतुकमेकरूपं वा जगत् स्यात् । एतदुक्तं भवति—सत्यपि भिन्ने कारणे यदि कार्य्यस्याभेदः, तदा समग्रं जगद् नानाविधकारणजन्यमेकरूपं स्यात्, कारणभेदा-ननुगमात् स्वातन्त्र्येण निर्हेतुकं वा स्यात् ; यद्येवं कथं तेन त्रिगुणात्मना ()चित्तेनै-कस्यैव प्रमातुः सुख-दुःखमोहमयानि ज्ञानानि जन्यन्ते ? मैवम् ; यथा अर्थस्त्रिगुणः, तथा चित्तमपि त्रिगुणं, तस्यार्थप्रतिभासोत्पत्तौ धर्मादयः सहकारिकारणं, तदुद्भवा-भिभववशात् कदाचित् चित्तस्य तेन तेन रूपेणाभिव्यक्तिः ; तथा च, कामुकस्य सन्निहितायां योषिति धर्मसहकृतं चित्तं सत्त्वस्याङ्गितया परिणममानं सुखमयं भवति ; तदेव अधर्मसहकारि रजसोऽङ्गितया दुःखरूपं सपत्नीमात्रस्य भवति ; तीव्राधर्मसहकारितया परिणममानं तमसोऽङ्गित्वेन कोपनायाः सपत्न्या मोहमयं भवति ; तस्माद्विज्ञानव्यतिरेकेणास्ति ∘ग्राह्यार्थः। तदेवं विज्ञानार्थयोस्तादात्म्यविरो-धान्न कार्य्यकारणभावः, कारणाभेदे सत्यपि कार्य्यस्य []भेदेऽतिप्रसङ्गादिति ज्ञाना-द्व्यतिरिक्तत्वमर्थस्य व्यवस्थितम् ॥ १५ ॥

यद्येवं, ज्ञानञ्चेत् प्रकाशकत्वाद् ग्रहणस्वभावम्, अर्थश्च प्रकाश्यत्वाद् ग्राह्यस्वभावः, तदा युगपत् सर्वानर्थान् कथं न गृह्णाति, न स्मरति च—इत्याशङ्कां परिहर्त्तुमाह—

---

† कथंचित् न कार्यत्वं (पाठा०) । () अर्थेन (पाठा०) । ∘ वाह्योऽर्थः (पाठा०) । [] कार्यभेदप्रसंगात् (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥ १६ ॥

तस्यार्थस्य, उपरागादाकारसमर्पणाच् चित्ते बाह्यं वस्तु ज्ञातमज्ञातञ्च भवति। अयमर्थः—सर्वः पदार्थः आत्मलाभे चित्तं ०सामग्रीमपेक्षते ; नीलादिज्ञानञ्चोपजायमानमिन्द्रियप्रणालिकया★ समागतमर्थोपरागं सहकारिकारणत्वेनापेक्षते ; व्यतिरिक्तस्यार्थस्य सम्बन्धाभावात् ग्रहीतुमशक्यत्वात् ; ततश्च येनैवार्थेनास्य स्वरूपोपरागः कृतः, तमेवार्थं तज्ज्ञानं व्यवहारयोग्यतां (:)जनयति ; ततः सोऽर्थः ज्ञात उच्यते ; येन चाकारो न समर्पितः, स न ज्ञातत्वेन व्यवह्रियते, यस्मिंश्चानुभूतेऽर्थे सादृश्यादिरर्थः※ संस्कारमुद्बोधयन् सहकारितां प्रतिपद्यते, तस्मिन्नेवार्थे स्मृतिरुपजायत इति न सर्वत्र ज्ञानं नापि स्मृतिरिति न कश्चिद्विरोधः ॥ १६ ॥

यद्येवं प्रमातापि पुरुषो यस्मिन् काले नीलं वेदयते, न तस्मिन् काले ★पीतादिमतश्चित्तसत्त्वस्यापि कदाचित् ग्रहीतृरूपत्वादाकारग्रहणे परिणामित्वं प्राप्तमित्याशङ्कां परिहर्त्तुमाह—

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयः तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात्[:] ॥१७॥

या एताश्चित्तस्य प्रमाण-विपर्य्ययादिरूपा वृत्तयः, तास्तत्प्रभोश्चित्तस्य ग्रहीतुः पुरुषस्य सदा सर्वकालमेव ज्ञाताः तस्य चिद्रूपतयाऽपरिणामित्वात्† परिणामित्वाभावादित्यर्थः। यद्यसौ परिणामी स्यात् तदा परिणामस्य कादाचित्कत्वात् तासां चित्तवृत्तीनां सदा ज्ञातत्वं नोपपद्येत। अयमर्थः—पुरुषस्य चिद्रूपस्य सदेवाधिष्ठातृत्वेन व्यवस्थितस्य यदन्तरङ्गं निर्मलं सत्त्वं, तस्यापि सदैवावस्थितत्वाद् येनार्थेनोपरक्तं भवति तथाविधस्यार्थस्य, सदैव चिच्छायासङ्क्रान्तिसद्भावः, तस्यां सत्यां सिद्धं ज्ञातृत्वमिति न कदाचित् काचित् ()परिणामित्वाशङ्का॥ १७ ॥

---

० चित्तमिति क्वचिन्न। ★ ऐन्द्रियकतया (पाठा०)। (:) नयति (पाठा०)। ※ सदृशादिरर्थः (पाठा०)। ★ पीतमतस्तस्यापि (पाठा०)। [:] सूत्रपाठविचारो भूमिकायां द्र०। † अपरिणामात् (पाठा०)। () परिणामाशङ्का (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ननु चित्तमेव यदि सत्त्वोत्कर्षात् प्रकाशकं, तदा स्व-परप्रकाशरूपत्वादात्मानमर्थञ्च प्रकाशयतीति तावतैव व्यवहारसमाप्तिः, किं ग्रहीत्रन्तरेण—इत्याशङ्कामपनेतुमाह—

न तत् स्वाभासं, दृश्यत्वात् ॥ १८ ॥

तच्चित्तं स्वाभासं स्वप्रकाशकं न भवति, पुरुषवेद्यं भवतीति यावत्; कुतः? दृश्यत्वात्, यत् किल दृश्यं तत् द्रष्टृवेद्यं दृष्टं, यथा घटादि। †दृश्यञ्च चित्तं तस्मान्न स्वाभासम् ॥ १८ ॥

ननु साध्याविशिष्टोऽयं हेतुः, दृश्यत्वमेव चित्तस्यासिद्धम्। किञ्च स्वबुद्धिसंवेदनद्वारेण हिताहितप्राप्ति-परिहाररूपा वृत्तयो दृश्यन्ते; तथा हि, क्रुद्धोऽहम्, भीतोऽहम्, अत्र मे राग इत्येवमाद्या संवित् बुद्धेरसंवेदने नोपपद्येत—इत्याशङ्कामपनेतुमाह—

एकसमये चोभयानवधारणात्❀ ॥ १९ ॥

अर्थस्य संवित्तिः इदन्तया व्यवहारयोग्यतापादनम्। अयमर्थः—सुखहेतुर्दुःखहेतुर्वेति बुद्धेः संविद् अहमित्येवमाकारेण सुख-दुःखरूपतया व्यवहारक्षमतापादनम्; एवंविधञ्च व्यापारद्वयमर्थप्रत्यक्षकाले* न युगपत् कर्त्तुं शक्यं, विरोधात्; न हि विरुद्धयोर्व्यापारयोर्युगपत् सम्भवोऽस्ति; अत एकस्मिन् काले उभयस्य स्वरूपस्य अर्थस्य चावधारयितुमशक्यत्वाद् न चितं स्वप्रकाशकं भवति। किन्तु एवंविधव्यापारद्वयं निष्पाद्य[] फलद्वयस्यासंवेदनाद् बहिर्मुखतयैव स्वनिष्ठत्वेन चित्तस्य स्वयं वेदनादर्थनिष्ठमेव फलं, न स्वनिष्ठमित्यर्थः ॥ १९ ॥

ननु मा भूद् बुद्धेः स्वयं ग्रहणं, बुद्ध्यन्तरेण भविष्यतीत्याशङ्क्याह—

चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ॥ २० ॥

यदि हि बुद्धिर्बुद्ध्यन्तरेण वेद्यते, सापि बुद्धिः स्वयमेव† स्वीयभावरूपम-

---

† वेद्यम् (पाठा०)। ❀ सूत्रपाठविचारो भूमिकायां द्र०। * प्रत्यक्षताकाले (पाठा०)। [] व्यापारद्वयनिष्पाद्यस्य (पाठा०)। † स्वयमबुद्ध्वा बुद्ध्यन्तरम् (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञात्वा अवुद्धा वुद्ध्यन्तरं प्रकाशयितुमसमर्थेति तस्या ग्राहकं(-) वुद्ध्यन्तरं कल्पनीयम्, तस्या अप्यन्यदित्यनवस्थानात् पुरुषान्तरेणार्थप्रतीतिर्न स्यात्; न हि प्रतीतौ अप्रतीतायामर्थः प्रतीतो भवति। स्मृतिसङ्करश्च प्राप्नोति, रूपे रसे व समुत्पन्नायां वुद्धौ तद्ग्राहिकाणामनन्तानां बुद्धीनां समुत्पत्तेर्वुद्धिजनितैः संस्कारैर्यदा युगपद् वह्वचः स्मृतयः क्रियन्ते, तदा बुद्धेरपर्य्यवसानाद् बुद्धि-स्मृतीनाञ्च वह्वीनां युगपदुत्पत्तेः 'कस्मिन्नर्थे स्मृतिरियमुत्पन्नेति' ज्ञातुमशक्यत्वात् स्मृतीनां सङ्करः स्यात् —इयं रूपे स्मृतिरियं रसे स्मृतिरिति न ज्ञायेत ॥ २० ॥

ननु बुद्धेः स्वप्रकाशत्वाभावे वुद्ध्यन्तरे चासंवेदने कथम् अयं विषयसंवेदनरूपो व्यवहारः इत्याशङ्क्य स्वसिद्धान्तमाह—

चितेरप्रतिसङ्क्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥ २१ ॥

पुरुषश्चिद्रूपत्वाच्चितिः, साऽप्रतिसङ्क्रमा—न विद्यते प्रतिसङ्क्रमोऽन्यत्र गमनं यस्याः सा तथोक्ता, अन्येनासङ्कीर्णेति यावत्। यथा गुणा अङ्गाङ्गिभावलक्षणे ❀ परिणामे अङ्गिनं गुणं सङ्क्रामन्ति तद्रूपतामिवापद्यन्ते; यथा वा लोके परमाणवः प्रसरन्तो विषयमारोपयन्ति,[] नैवं चितिशक्तिः, तस्याः सर्वदैकरूपतया सुप्रतिष्ठितत्वेन व्यवस्थितत्वात्; अतस्तत्सन्निधाने यदा बुद्धिस्तदाकारतामापद्यते [:]चेतनोपजायते, बुद्धिवृत्तिप्रतिसङ्क्रान्ता च यदा चिच्छक्तिः बुद्धिवृत्तिविशिष्टतया * संवेद्यते, तदा बुद्धेः स्वस्यात्मनो(:) वेदनं संवेदनं भवतीत्यर्थः ॥ २१ ॥

इत्थं स्वसंविदितं चित्तं सर्वानुग्रहणसामर्थ्येन सकलनिर्वाहिक्षमं † भविष्यतीत्याह—

द्रष्टृ-दृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥ २२ ॥

द्रष्टा पुरुषः, तेनोपरक्तं तत्सन्निधानेन तद्रूपतामिव प्राप्नोति, दृश्योपरक्तं विष-

() वौधकं (पाठा०)। ❀अङ्गादिभावलक्षणे (पाठा०)। [] आरूपर्यन्त (पाठा०)। [:] चेतनेवोपजायते (पाठा०)। * वुद्धिवृत्त्यावेशात् तथा संपद्यते (पाठा०)। (:) आत्मना (पाठ०)। † सकलव्यवहारनिर्वाहिक्षमम् (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

योपरक्तं, गृहीतविषयाकारपरिणामं यदा भवति तदा तदेव चित्तं सर्वार्थग्रहणसमर्थं भवति; यथा निर्मलं स्फटिकदर्पणाद्येव () प्रतिबिम्बग्रहणसमर्थम्, एवं रजस्तमोभ्यामनभिभूतं सत्त्वं शुद्धत्वाच् चिच्छायाग्रहणसमर्थं भवति, न पुनरशुद्धत्वाद्रजस्तमसी। तद् न्यग्भूतरजस्तमोरूपमङ्गितया सत्त्वं निश्चलप्रदीपशिखाकारं सदैकरूपतया परिणममानं चिच्छायाग्रहणसामर्थ्यादा-मोक्षप्राप्तेरवतिष्ठते। यथा अयस्कान्तसन्निधाने लोहस्य चलनमाविर्भवति, एवं चिद्रूपपुरुषसन्निधाने सत्त्वस्याभिव्यङ्ग्यमभिव्यज्यते चैतन्यम्। अत एव अस्मिन् दर्शन द्वे चिच्छक्ती‡—नित्योदिता अभिव्यङ्ग्या च; नित्योदिता चिच्छक्तिः पुरुषसन्निधानादभिव्यक्तमभिव्यङ्ग्यचैतन्यं सत्त्वम्; अभिव्यङ्ग्या चिच्छक्तिः तदत्यन्तसन्निहितत्वादन्तरङ्गं पुरुषस्य भोग्यतां प्रतिपद्यते। तदेव शान्तब्रह्मवादिभिः साङ्ख्यैः पुरुषस्य परमात्मनोऽधिष्ठेयं कर्मानुरूपं सुख-दुःखभोक्तृतया व्यपदिश्यते। यत्तु अनुद्रिक्तत्वादेकस्यापि गुणस्य कदाचित् कस्यचिदङ्गित्वात् त्रिगुणं प्रतिक्षणं परिणममानं सुख-दुःख-मोहात्मकमनिर्मलं, तत्तस्मिन् कर्मानुरूपे शुद्धे सत्त्वे स्वाकारसमर्पणद्वारेण संवेद्यतामापादयति, तत् शुद्धमाद्यं चित्तसत्त्वमेवेति प्रतिसङ्क्रान्तचिच्छायमन्यतो गृहीतविषयाकारेण चित्तेन उपढौकितमाकारं चित्सङ्क्रान्तिवलात् चेतनायमानं वास्तवचैतन्याभावेऽपि सुख-दुःखस्वरूपं भोगमनुभवति, स एवं भोगोऽत्यन्तसन्निधानेन विवेकाग्रहणाद् अभोक्तुरपि पुरुषस्य भोग इति व्यपदिश्यते। अनेनैवाभिप्रायेण विन्ध्यवासिनोक्तं—"सत्त्वतप्यत्वमेव पुरुषतप्यत्वम्" इति। अन्यत्रापि —"बिम्बे* प्रतिबिम्बमानच्छायासदृशच्छायोद्भवः प्रतिबिम्बशब्देनोच्यते; एवं सत्त्वेऽपि पौरुषेयचिच्छायासदृशचिदभिव्यक्तिः प्रतिसङ्क्रान्तिशब्दार्थः" ❀ इति।

ननु प्रतिबिम्बं नाम निर्मलस्य नियतपरिणामस्य निर्मले दृष्टम्; यथा मुखस्य दर्पणे, अत्यन्तनिर्मलस्य व्यापकस्य अपरिणामिनः पुरुषस्य तस्मादत्यन्तनिर्मलात् पुरुषादनिर्मले सत्त्वे कथं प्रतिबिम्बनमुपपद्यते? उच्यते—प्रतिबिम्बनस्य स्वरूपमनवगच्छता भवतेदमभ्यधायि, यैव सत्त्वगताया अभिव्यङ्ग्यायाश्चि-

---

() स्फाटिकं दर्पणाद्येव (पाठा०)। ‡ चित्तवृत्ती (पाठा०)। * प्रतिबिम्बे।

❀ सदृशस्वकीयचिच्छायान्तराभिव्यक्तिः प्रतिबिम्बशब्दार्थः (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

च्छक्तेः, पुरुषस्य सान्निध्यादभिव्यक्तिः * सैव प्रतिविम्बनमुच्यते, यादृशी पुरुषगता चिच्छक्तिस्तच्छायाप्यत्राविर्भवति। यदप्युक्तम्—अत्यन्तनिर्मलः पुरुषः कथमनिर्मले सत्त्वे प्रतिसङ्क्रामतीति ? तदप्यनैकान्तिकं, नैर्मल्यादपकृष्टेऽपि जलादावादित्यादयः प्रतिसङ्क्रान्ताः समुपलभ्यन्ते। यदप्युक्तम्—अनवच्छिन्नस्य नास्ति प्रतिसङ्क्रान्तिरिति, तदप्ययुक्तं, व्यापकस्यास्याकाशस्य दर्पणादौ प्रतिसङ्क्रान्तिदर्शनात्; एवं सति न काचिदनुपपत्तिः प्रतिविम्बदर्शनस्य। ननु सात्त्विकपरिणामरूपे बुद्धिसत्त्वे पुरुषसन्निधानादभिव्यङ्गचायाश्चिच्छक्तेर्बाह्याकार-सङ्क्रान्तौ पुरुषस्य सुखदुःखरूपो भोग इत्युक्तं, तदनुपपन्नं, तदेव चित्तसत्त्वं प्रकृताव-परिणतायां कथं सम्भवति ? किमर्थश्च तस्याः परिणामः ? अथोच्येत, पुरुषस्यार्थो-पभोगसम्पादनं तया कर्त्तव्यम्, अतः पुरुषार्थकर्त्तव्यतयाऽस्या युक्त एव परिणामः ? तच्चानुपपन्नं, पुरुषार्थकर्त्तव्यताया एवानुपपत्तेः; पुरुषार्थो मया कर्त्तव्य एवंविधोऽ-ध्यवसायः पुरुषार्थकर्त्तव्यतोच्यते, † जडायाश्च प्रकृतेः कथं प्रथममेवंविधोऽध्यव-सायः ? अस्ति चेदध्यवसायः, कथं जडत्वम् ? अत्रोच्यते—अनुलोम-प्रतिलोमलक्षण-परिणामद्वये सहजं शक्तिद्वयमस्ति, तदेव पुरुषार्थकर्त्तव्यतोच्यते; सा च शक्तिर-चेतनाया अपि प्रकृतेः सहजैव। तत्र महदादिमहाभूतपर्य्यन्तोऽस्या वहिर्मुखतयाऽनुलोमः परिणामः, पुनः स्वकारणानुप्रवेशनद्वारेणास्मिताऽन्तः परिणामः प्रतिलोमः। इत्थं पुरुषस्य ()भोगपरिसमाप्तेः सहजशक्तिद्वयक्षयात् कृतार्था प्रकृतिर्न पुनः परिणाममारभते ; एवंविधायाञ्च पुरुषार्थकर्त्तव्यतायां जडाया अपि प्रकृतेर्न काचिदनुपपत्तिः।

ननु यदि ईदृशी शक्तिः सहजैव प्रधानस्यास्ति, तत् किमर्थं मोक्षार्थिभिर्मोक्षाय यत्नः क्रियते ? मोक्षस्य चानर्थनीयत्वे तदुपदेशकशास्त्रस्यानर्थक्यं स्यात् ? उच्यते—योऽयं प्रकृतिपुरुषयोरनादिर्भोग्य-भोक्तृ॰त्वलक्षणः सम्बन्धः, तस्मिन् सति व्यक्तचेतनायाः प्रकृतेः कर्त्तृत्वाभिमानाद् दुःखानुभवे सति कथमियं दुःख-

* सान्निध्ये (पाठा॰)। † कर्तव्यतयोच्यते (पाठा॰)। () आ भोग परिसमाप्तेः (पाठा॰)। ॰ भोक्तृभावलक्षणः (पाठा॰)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निवृत्तिरात्यन्तिकी मम स्याद् इति भवत्येवाध्यवसायः ; अतो दुःखनिवृत्त्युपायोपदेशकशास्त्रोपदेशापेक्षा अस्त्येव प्रधानस्य ; तथाभूतमेव कर्मानुरूपं बुद्धिसत्त्वं शास्त्रोपदेशस्य विषयः,दर्शनान्तरेष्वप्येवंविध एवाविद्यास्वभावः शास्त्रेऽधिक्रियते† ; स च मोक्षाय प्रयतमान एवंविधशास्त्रोपदेशं सहकारिणमपेक्ष्य मोक्षाख्यं फलमासादयति । सर्वाण्येव कार्य्याणि प्राप्तायां सामग्र्यामात्मानं लभन्ते, अस्य प्रतिलोभपरिणामद्वारेणैवोत्पाद्यस्य मोक्षाख्यस्य कार्य्यस्य ईदृश्येव सामग्री प्रमाणेन निश्चिता, प्रकारान्तरेणानुपपत्तेः; अतस्तां विना कथं भवितुमर्हति ? अतः स्थितमेतत्-सङ्क्रान्तविषयोपरागमभिव्यक्तचिच्छायं बुद्धिसत्त्वं विषयनिश्चयद्वारेण समग्रां लोकयात्रां निर्वाहयतीति । एवंविधमेव चित्तं पश्यन्तो भ्रान्ताः स्वसंवेदनं चित्तं, चित्तमात्रं च []जगदित्येवं ब्रुवाणाः प्रतिबोधिता भवन्ति ॥ २२ ॥

ननु यद्येवंविधादेव चित्तात् सकलव्यवहारनिष्पत्तिः, कथं प्रमाणशून्यो द्रष्टा अभ्युपगम्यते—इत्याशङ्क्य द्रष्टुः प्रमाणमाह—

तदसङ्ख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥२३॥

तदेव चित्तं सङ्ख्यातुमशक्याभिर्वासनाभिश्चित्रमपि नानारूपमपि परार्थं परस्य स्वामिनो भोक्तुर्भोगापवर्गलक्षणमर्थं साधयतीति; कुतः ? संहत्यकारित्वात् संहत्य सम्भूय मिलित्वाऽर्थक्रियाकारित्वात्; यच्च संहत्यार्थक्रियाकारि, तत् परार्थं दृष्टम्; यथा शयनासनादि । सत्त्वरजस्तमांसि च चित्तलक्षणपरिणामभाञ्जि संहत्यकारीणि च, अतः परार्थानि । यः परः स पुरुषः । ननु यादृशेन शयनासनादीनां () परेण शरीरवता पारार्थ्यमुपलब्धं, तद्दृष्टान्तबलेन तादृश एव परः सिध्यति; यादृशश्च भवतां परोऽसंहतरूपोऽभिप्रेतः तद्विपरीतस्य सिद्धेरयमिष्टविघातकृद्धेतुः । उच्यते—यद्यपि सामान्येन परार्थमात्रे* व्याप्तिर्गृहीता, तथाऽपि सत्त्वादिविलक्षणधर्मिपर्य्यालोचनया तद्विलक्षण एव भोक्ता परः सिध्यति; यथा ॐचेन्धनावृते शिखरिणि

---

† अभिधीयते (पाठा०) । [] स्वसंवेदनचित्तमात्रं जगत् (पाठा०) । () शयनासनादिना (पाठा ०) । * परार्थमात्रत्वेन (पाठा०) । ॐ क्वचित् इन्धनस्थले चन्दनशब्दः पठ्यते वाक्येऽस्मिन् स्थलद्वये ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विलक्षणाद्धूमाद्वह्निरनुमीयमान इतरवह्निविलक्षणश्चेन्धनप्रभव एव प्रतीयते, एवमिहापि विलक्षणस्य सत्त्वाख्यस्य भोग्यस्य परार्थत्वेऽनुमीयमाने तथाविध एव भोक्ता अधिष्ठाता परश्चिन्मात्ररूपोऽसंहतः सिध्यति। यदि च तस्य परत्वं सर्वोत्कृष्टत्वमेवं प्रतीयत तथापि तामसेभ्यो विषयेभ्यः प्रकृष्यते शरीरं, प्रकाशरूपेन्द्रियाश्रयत्वात्; तस्मादपि प्रकृष्यन्ते इन्द्रियाणि, ततोऽपि प्रकृष्टं सत्त्वं प्रकाशरूपं, तस्यापि यः प्रकाशकः प्रकाश्यविलक्षणः, स चिद्रूप एव []भवतीति कुतस्तस्य संहतत्वम्? ॥२३॥

इदानीं शास्त्रफलं कैवल्यं निर्णेतुं दशभिः सूत्रैरुपक्रमते—

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनानिवृत्तिः ॥ २४ ॥

एवं सत्त्व-पुरुषयोरन्यत्वे साधिते यस्तयोर्विशेषं पश्यति अयमस्मादन्य इत्येवंरूपं, तस्य विज्ञातचित्तरूपसत्त्वस्य चित्ते या आत्मभावभावना सा निवर्तते, चित्तमेव कर्तृ, ज्ञातृ, भोक्तृ इत्यभिमानो निवर्तते ॥ २४ ॥

तस्मिन् सति किं भवतीत्याह—

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं ‡चित्तम् ॥ २५ ॥

यदस्य अज्ञाननिम्नपथं वहिर्मुखं विषयोपभोगफलं चित्तमासीत्, तदिदानीं विवेक†मार्गमन्तर्मुखं कैवल्यप्राग्भारं कैवल्यप्रारम्भं () सम्पद्यते इति ॥ २५ ॥

अस्मिश्च विवेकवाहिनि चित्ते येऽन्तरायाः प्रादुर्भवन्ति, तेषां हेतुप्रतिपादनद्वारेण त्यागोपायमाह—

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥२६ ॥

तस्मिन् समाधौ स्थितस्य, छिद्रेष्वन्तरायेषु, यानि प्रत्ययान्तराणि व्युत्थानरूपाणि ज्ञानानि, प्राग्भूतेभ्यः :: व्युत्थानानुभवजेभ्यः संस्कारेभ्योऽहं ममेत्येवंरूपाणि क्षीयमाणेभ्योऽपि प्रभवन्ति, अन्तःकरणोच्छित्तिद्वारेण तेषां हानं कर्त्तव्यमित्युक्तं भवति ॥ २६ ॥

[] इव (पाठा०)। ‡ प्राग्भावमिति सूत्रे वृत्तौ च क्वचित् पठ्यते, सोपपाठः। †विवेकानिम्नमार्गम् (पाठा०)। ()वा इत्यधिकं क्वचित्। :: प्राक्तनेभ्यः (पाठा०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हानोपायश्च पूर्वमेवोक्त इत्याह—

हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ।। २७ ।।

यथा क्लेशानामविद्यादीनां हानं पूर्वमुक्तं (२।१०–११), तथा संस्काराणामपि कर्त्तव्यं, यथा ते ज्ञानाग्निना प्लुष्टा दग्धबीजकल्पा न पुनश्चित्तभूमौ प्ररोहं लभन्ते, तथा संस्कारा अपि ।। २७ ।।

एवञ्च प्रत्ययान्तरान्तरानुदये स्थिरीभूते समाधौ यादृशस्य योगिनः समाधेः प्रकर्षप्राप्तिर्भवति तथाविधमुपायमाह—

प्रसङ्ख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्याते-
धर्ममेघः समाधिः ।। २८ ।।

प्रसङ्ख्यानं यावतां तत्त्वानां यथाक्रमंव्यवस्थितानां परस्परविलक्षणस्वरूपविभावनं, तस्मिन् सत्यप्यकुसीदस्य फलमलिप्सोः, प्रत्ययान्तराणामनुदये॥ सर्वप्रकारविवेकख्यातेः परिशेषाद् धर्ममेघः समाधिर्भवति । प्रकृष्टमशुक्लकृष्णं धर्मं परमपुरुषार्थसाधकं मेहति सिञ्चतीति धर्ममेघः; अनेन प्रकृष्टधर्मस्यैव ज्ञानहेतुत्वमित्युपपादितं भवति ।। २८ ।।

तस्माद्धर्ममेघात् किं भवतीत्याह—

ततः क्लेश-कर्मनिवृत्तिः ।। २९ ।।

क्लेशानामविद्यादीनामभिनिवेशान्तानां, कर्मणाञ्च शुक्लादिभेदेन त्रिविधानां, ज्ञानोदयात् पूर्वपूर्वकारणनिवृत्त्या निवृत्तिर्भवति ।। २९ ।।

तेषु निवृत्तेषु किं भवती त्याह—

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ।।३०।।

आव्रियते चित्तमेभिरित्यावरणानि क्लेशाः, ते एव मलास्तेभ्योऽपेतस्य तद्विरहितस्य, ज्ञानस्य गगननिभस्य, आनन्त्यादनवच्छेदात्, ज्ञेयमल्पं गणनास्पदं *भवति, अक्लेशेनैव सर्वं ज्ञेयं जानातीत्यर्थः ।। ३० ।।

॥ अनुदयात् (पाठा०) । * न भवति (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ततः किमित्याह—

ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥ ३१ ॥

कृतो निष्पादितो भोगापवर्गलक्षणः पुरुषार्थः प्रयोजनं यैस्ते कृतार्थाः, गुणाः सत्त्व-रजस्तमांसि, तेषां परिणाम आ-पुरुषार्थसमाप्तेरानुलोम्येन प्राति-लोम्येनाङ्गाङ्गिभावः स्थितिलक्षणः, तस्य योऽसौ क्रमो वक्ष्यमाणः, तस्य परिसमाप्तिर्निष्ठा, न पुनरुद्भव इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

क्रमस्योक्तस्य लक्षणमाह—

क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥ ३२ ॥

क्षणोऽल्पीयान् कालः तस्य योऽसौ प्रतियोगी क्षणविलक्षणः, परिणामः अपरान्तनिर्ग्राह्यः अनुभूतेषु क्षणेषु पश्चात् सङ्कलनबुद्धचैव यो गृह्यते, स क्षणानां क्रम उच्यते, न ह्यननुभूतेषु क्रमः परिज्ञातुं शक्यः ॥ ३२ ॥

इदानीं फलभूतस्य कैवल्यस्यासाधारण*स्वरूपमाह—

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं, स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति() ॥ ३३ ॥

समाप्तभोगापवर्गलक्षणपुरुषार्थानां गुणानां यः प्रतिप्रसवः प्रतिलोमस्य परिणामस्य समाप्तौ विकारानुद्भवः क्षणेषु०; यदि वा—चितिशक्तेर्वृत्तिसारूप्य-निवृत्तौ स्वरूपमात्रेऽवस्थानं तत् कैवल्यमुच्यते ।

न केवलमस्मद्दर्शने क्षेत्रज्ञः कैवल्यावस्थायामेवंविधश्चिद्रूपः यावद्दर्श-नान्तरेष्वपि विमृश्यमाण एवंरूपोऽवतिष्ठते; तथा हि—संसारदशायामात्मा कर्त्तृत्वभोक्तृत्वानुसन्धातृत्वमयः प्रतीयते, अन्यथा यद्ययमेकः क्षेत्रज्ञस्तथाविधो न स्यात्, तदा ज्ञानक्षणानामेव पूर्वापरानुसन्धातृशून्यानामात्मभावे नियतः कर्मफलसम्बन्धो न स्यात् †कृतहानाकृताभ्यागमप्रसङ्गश्च । यदि येनैव

* सधारणस्वरूपं (पाठा०)। () सूत्रपाठविचारो भूमिकायां द्र०।
० क्षणेष्विति क्वचिन्न पठ्यते। † कृतनाशा (पाठा०)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शास्त्रोपदिष्टमनुष्ठितं कर्म तस्यैव भोक्तृत्वं भवेत्, तदा हिताहितप्राप्ति-परिहाराय सर्वस्य प्रवृत्तिर्घटेत, सर्वस्यैव व्यवहारस्य हानोपादानलक्षणस्य अनुसन्धानेनैव प्राप्तत्वात्; ज्ञानक्षणानां परस्परभेदेनानुसन्धानशून्यत्वात् तदनुसन्धानाभावे कस्यचिदपि व्यवहारानुपपत्तेः कर्त्ता भोक्ता अनुसन्धाता यः स आत्मेति व्यवस्थाप्यते। मोक्षदशायां तु सकलग्राह्यग्राहकलक्षणव्यवहाराभावाच्चैतन्यमात्रमेव तस्य अवशिष्यते, तच् चैतन्यं चितिमात्रत्वेनैवोपपद्यते, न पुनरात्मसंवेदनेन, यस्माद् विषयग्रहणसमर्थनमेव† चितेः रूपं, नात्मग्राहकत्वम्; तथा हि—अर्थश्चित्या गृह्यमाणोऽयमिति गृह्यते, स्वरूपं गृह्यमाणमहमिति, न पुनर्युगपद्, बहिर्मुखताऽन्तर्मुखतालक्षणव्यापारद्वयं परस्परविरुद्धं कर्त्तुं शक्यम्; अत एकस्मिन् समये व्यापारद्वयस्य कर्त्तुमशक्यत्वाच् *चिद्रूपतयैवावशिष्यते; अतो मोक्षावस्थायां निवृत्ताधिकारेषु गुणेषु चिन्मात्ररूप एवात्माऽवतिष्ठते इत्येव युक्तम्।

संसारदशायान्तु एवम्भूतस्यैव कर्त्तृत्वं भोक्तृत्वमनुसन्धातृत्वञ्च सर्वमुपपद्यते; तथा हि—योऽयं प्रकृत्या सहानादिर्नैसर्गिकोऽस्य भोग्यभोक्तृत्व-लक्षणसम्बन्धोऽविवेकख्यातिमूलः, तस्मिन् सति पुरुषार्थकर्त्तव्यतारूपशक्ति-द्वयसद्भावे या महदादिभावेन परिणतिः, तस्यां संयोगे सति यदात्मनोऽधिष्ठातृत्वं, चिच्छायासमर्पणसामर्थ्यं, बुद्धिसत्त्वस्य च सङ्क्रान्तचिच्छायाग्रहणसामर्थ्यं, चिदवष्टब्धायाश्च बुद्धेर्योऽयं कर्त्तृत्व-भोक्तृत्वाध्यवसायः, तत एव सर्वस्यानुसन्धानपूर्वकस्य व्यवहारस्य निष्पत्तेः किमन्यैः फल्गुभिः कल्पनाजल्पैः() ? यदि पुनरेवंभूतमार्गव्यतिरेकेण पारमार्थिकमात्मनः कर्त्तृत्वाद्यङ्गीक्रियेत, तदाऽस्य परिणामित्वप्रसङ्गः, परिणामित्वाच्चानित्यत्वे तस्य आत्मत्वमेव न स्यात्। यथा ह्येकस्मिन्नेव समये एकेनैकरूपेण न परस्परविरुद्धावस्थानुभवः सम्भवति। तथाहि—यस्यामवस्थायांदुःखानुभवितृत्वम्; अतोऽवस्थानानात्वात् तदभिन्नस्यावस्थावतो नानात्वं, नानात्वाच्च परिणामित्वान्नात्मत्वं, नापि नित्यत्वम्; अत एव शान्तब्रह्मवादिभिः साङ्ख्यैरात्मनः सदैव संसारदशायां मोक्षदशायाञ्च एकं रूपमङ्गीक्रियते।

ये तु वेदान्तवादिनश्चिदानन्दमयत्वमात्मनो मोक्षं[] मन्यन्ते, तेषां न युक्तः

---

† समर्थत्वम् (पाठा०)। * चिद्रूपतैवावशिष्यते (पाठा०)। () जातैः (पाठा०)। ‡ आत्मसमवेते सुखे समुत्पन्ने तस्यानु (पाठा०)। []मोक्षं (पाठा)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पक्षः ; तथाहि—आनन्दस्य सुखस्वरूपत्वात् सुखस्य च सदैव संवेद्यमानतयैव प्रतिभासात् संवेद्यमानत्वञ्च संवेदनव्यतिरेकेणानुपपन्नमिति संवेद्य-संवेदनयोर्द्वयोरभ्युपगमाद् अद्वैतहानिः। अथ सुखात्मकत्वमेव तस्योच्येत, तद् विरुद्धधर्माध्यासादनुपपन्नं, न हि संवेदनं संवेद्यञ्चैकं भवितुमर्हतीति। किञ्च, अद्वैतवादिभिः कर्मात्म-परमात्मभेदेन आत्मा द्विविधः स्वीकृतः ; इत्थञ्च तत्र येनैव रूपेण सुख-दुःखभोक्तृत्वं कर्मात्मनः, तेनैव रूपेण यदि परमात्मनः स्यात्, तदा कर्मात्मवत् परमात्मनः परिणामित्वमविद्यास्वभावत्वं च स्यात्। अथ न तस्य साक्षाद् भोक्तृत्वं, किन्तु तदुपढौकितमुदासीनतया अधिष्ठातृत्वेन स्वीकरोति, तदा अस्मद्दर्शनानुप्रवेशः। आनन्दरूपता च पूर्वमेव निराकृता।

किञ्च, अविद्यस्वभावत्वे निःस्वभावत्वात् कः शास्त्राधिकारी ? न तावन्नित्यनिर्मुक्तत्वात् परमात्मा, नापि अविद्यास्वभावत्वात् कर्मात्मा ; ततश्च सकलशास्त्रनैयर्थ्यप्रसङ्गः। अविद्यामयत्वे च जगतोऽङ्गीक्रियमाणे कस्याविद्येति विचार्य्यते—न तावत् परमात्मनः, नित्यमुक्तत्वाद् विद्यारूपत्वाच्च ; कर्मात्मनोऽपि परमार्थतो निःस्वभावतया शशविपाणप्रख्यत्वे कथमविद्यासम्बन्धः ? अथोच्यते, एतदेवाविद्याया अविद्यात्वं यदविचारणीयत्वम्, अविचारणीयत्वं नाम यैवहि विचारेण दिनकरस्पष्टनीहारवद् विलयमुपयाति साऽविद्येत्युच्यते ; मेवं, यद्वस्तु किञ्चित् कार्य्यं करोति तदवश्यं कुतश्चिद्भिन्नमभिन्नंवा वक्तव्यम्, अविद्यायाश्च संसारलक्षणकार्य्यकर्त्तृत्वमवश्यमङ्गीकर्त्तव्यं, तस्मिन् सत्यपि यदि अनिर्वाच्यत्वमुच्यते, तदा कस्यचिदपि वाच्यत्वं न स्यात्, ब्रह्मणोऽप्यवाच्यत्वप्रसक्तिः ; तस्मादधिष्ठातृतारूपव्यतिरेकेण नान्यदात्मनो रूपमुपपद्यते, अधिष्ठातृत्वं च चिद्रूपत्वमेव, तद्व्यतिरिक्तस्य धर्मस्य कस्यचित् प्रमाणानुपपत्तेः।

यैरपि नैयायिकादिभिरात्मा चेतनायोगाच्चेतन इत्युच्यते, चेतनापि तस्य मनःसंयोगजा ; तथा हि—इच्छा-ज्ञान-प्रयत्नादयो ये गुणास्तस्य व्यवहारदशायाम् आत्म-मनःसंयोगादुत्पद्यन्ते, तैरेव च गुणैः स्वयं ज्ञाता कर्त्ता भोक्तेति व्यपदिश्यते, मोक्षदशायां तु मिथ्याज्ञाननिवृत्तौ तन्मूलानां दोषाणामपि निवृत्तिः, तेषां बुद्ध्यादीनां विशेषगुणानामत्यन्तोच्छित्तिः, स्वरूपमात्रप्रतिष्ठत्वमात्मनोऽङ्गीकृतं, तेषामयुक्तः पक्षः ; यतस्तस्यां दशायां नित्यत्व-व्यापकत्वादयो गुणा आकाशादीनामपि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सन्ति ; अतस्तद्वैलक्षण्येनात्मनश्चिद्रूपत्वमवश्यमङ्गीकार्य्यम् । आत्मत्वलक्षणजातियोग इति चेत्, न ; सर्वस्यैव तज्जातियोगः सम्भवति ; अतो जातिभ्यो वैलक्षण्यमात्मनोऽवश्यमङ्गीकर्त्तव्यं, तस्याधिष्ठातृत्वं चिद्रूपतयैव घटते नान्यथा ।

यैरपि मीमांसकैः कर्मकर्त्तृरूप आत्मा अङ्गीक्रियते, तेषामपि न युक्तः पक्षः ; तथाहि—अहं-प्रत्ययग्राह्य आत्मेति तेषां प्रतिज्ञा ; अहं-प्रत्यये च कर्त्तृत्वं कर्मत्वञ्चात्मन एव ; न च एतद् विरुद्धत्वादुपपद्यते, कर्त्तृत्वं प्रमातृत्वं, कर्मत्वञ्च प्रमेयत्वं, न चैतद्विरुद्धधर्माध्यासो युगपदेकस्य घटते, यत् विरुद्धधर्माध्यस्तं न तदेकं, यथा भावाभावौ ; विरुद्धे च कर्तृत्वकर्मत्वे ? अथोच्यते—न कर्तृत्व-कर्मत्वयोर्विरोधः, किन्तु कर्तृत्व-करणत्वयोः । केन एतदुक्तं, विरुद्धधर्माध्यासस्य तुल्यत्वात् कर्तृत्वकरणत्वयोरेव विरोधः, न कर्तृत्वकर्मत्वयोः ; तस्मादहं-प्रत्ययग्राह्यत्वं परिहृत्य आत्मनोऽधिष्ठातृत्वमेवोपपन्नं, तच्च चेतनत्वमेव ।

यैरपि द्रव्यबोधपर्य्यायभेदेन आत्मनोऽव्यापकस्य शरीरपरिमाणस्य परिणामित्वमिष्यते, तेषाम् उत्थानपराहत एव पक्षः ; परिणामित्वे चिद्रूपताहानेः ; चिद्रूपताऽभावे किमात्मन आत्मत्वम् ? तस्मादात्मन आत्मत्वमिच्छता चिद्रूपत्वमेवाङ्गीकर्त्तव्यं, तच्चाधिष्ठातृत्वमेव ।

केचित् कर्त्तृरूपमेवात्मानमिच्छन्ति ; तथा हि—विषयसान्निध्ये या ज्ञानलक्षणा क्रिया समुत्पन्ना, तस्यां विषयसंवित्तिः फलं, तस्याञ्च फलरूपायां संवित्तौ स्वरूपं प्रकाशरूपतया प्रतिभासते, विषयश्च ग्राह्यतया, आत्मा च ग्राहकतया, 'घटमहं जानामी'त्याकारेण तस्याः समुत्पत्तेः । क्रियायाश्च कारणं कर्त्तैव भवति, इत्यतः कर्त्तृत्वं भोक्तृत्वञ्चात्मनो रूपमिति । तदनुपपन्नं, यस्मात्तासां संवित्तीनां स किं कर्त्तृत्वं युगपत् प्रतिपद्यते ? क्रमेण वा ? युगपत् कर्त्तृत्वे क्षणान्तरे तस्य कर्त्तृत्वं न स्यात् । अथ क्रमेण कर्त्तृत्वम् ? तदैकरूपस्य न घटते । एकेन रूपेण चेत् तस्य कर्त्तृत्वं, तदैकस्य सदैव सन्निहितत्वात् सर्वफलमेकरूपं स्यात् । अथ नानारूपतया तस्य कर्त्तृत्वम् ? तदा परिणामित्वम् ; परिणामित्वाच्च न चिद्रूपत्वम् ; अतश्चिद्रूपत्वमात्मन इच्छद्भिर्न साक्षात्कर्त्तृत्वमङ्गीकर्त्तव्यं, यादृशमस्माभिः कर्त्तत्वमात्मनः प्रतिपादितं कूटस्थस्य नित्यस्य चिद्रूपस्य, तदेवोपपन्नम् ।

एतेन 'स्वप्रकाशस्य आत्मनो विषयसंवित्तिद्वारेण ग्राहकत्वमभिव्यज्यते' इति ये वदन्ति, तेऽपि अनेनैव निराकृताः ।

केचिद् विमर्शात्मकत्वेन आत्मनश्चिन्मयत्वमिच्छन्ति, त आहुः, न विमर्शव्यतिरेकेण चिद्रूपत्वमात्मनो निरूपयितुं शक्यं, जगद्वैलक्षण्यमेव चिद्रूपत्वमुच्यते, तच्च विमर्शव्यतिरेकेण निरूप्यमाणं नान्यथा अवतिष्ठते । तदनुपपन्नम् ; इदमित्थमेव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
Acc. No. 4127

रूपमिति यो विचारः सः विमर्श इत्युच्यते, स चास्मिताव्यतिरेकेण नोत्थानमेव लभते, तथा हि—आत्मन्युपजायमानो विमर्शः 'अहमेवम्भूत' इत्यनेन आकारेण संवेद्यते ; ततश्चाहंशब्दभिन्नस्य आत्मलक्षणस्य अर्थस्य तत्र स्फुरणान्न तत्र विकल्पस्वरूप*ताऽतिक्रमः ; विकल्पश्चाध्यवसायात्मा बुद्धिधर्मः, न चिद्धर्मः, कूटस्थनित्यत्वेन चितेः सदैकरूपत्वाद् नित्यत्वान्नाहङ्कारानुप्रवेशः, तदनेन सविमर्शत्वमात्मनः प्रतिपादयता बुद्धिरेवात्मत्वेन भ्रान्त्या प्रतिपादिता, न प्रकाशात्मनः परस्य पुरुषस्य स्वरूपमवगतमिति ।

इत्थं सर्वेष्वेव दर्शनेष्वधिष्ठातृत्वं विहाय नान्यदात्मनो रूपमुपपद्यते । अधिष्ठातृत्वञ्च चिद्रूपत्वं, तच्च जडाद्वैलक्षण्यमेव, चिद्रूपतया यदधितिष्ठति तदेव भोग्यतां नयति, यच्च चेतनाधिष्ठितं तदेव सकलव्या†पारयोग्यं भवति । एवञ्च सति नित्यत्वात् प्रधानस्य व्यापारनिवृत्तौ यदात्मनः कैवल्यमस्माभिरुक्तं, तद्विहाय दर्शनान्तराणां नान्या गतिः ; तस्मादिदमेव युक्तमुक्तं, वृत्तिसारूप्यपरिहारेण स्वरूपे प्रतिष्ठा चितिशक्तेः कैवल्यम् ।

तदेवं सिद्धयन्तरेभ्यो विलक्षणां सर्वसिद्धिमूलभूतां समाधिसिद्धिमभिधाय, जात्यन्तरपरिणामलक्षणस्य च सिद्धिविशेषस्य प्रकृत्यापूरणमेव कारणमित्युपपाद्य, धर्मादीनां प्रतिबन्धकनिवृत्तमात्रे एव सामर्थ्यमिति प्रदर्श्य, निर्माणचित्तानामस्मितामात्रादुद्भव इत्युक्त्वा, तेषाञ्च योगिचित्तमेवाधिष्ठापकमिति प्रदर्श्य, योगिचित्तस्य चित्तान्तरवैलक्षण्यमभिधाय, तत्कर्मणामलौकिककत्वञ्चोपपाद्य, विपाकानुगुणानां वासनानामभिव्यक्तिसामर्थ्यं कार्य्यकारणयोश्चैक्यप्रतिपादनेन व्यवहितानामपि वासनानामानन्तर्य्यमुपपाद्य, तासामानन्त्येऽपि हेतु-फलादिद्वारेण हानमुपदर्श्य, अतीतादिष्वध्वसु धर्माणां सद्भावमुपपाद्य, विज्ञानवादं निराकृत्य, साकारवादञ्च प्रतिष्ठाप्य, पुरुषस्य ज्ञातृत्वमुक्त्वा, चित्तद्वारेण सकलव्यवहारनिष्पत्तिमुपपाद्य, पुरुषसत्त्वे प्रमाणमुपदर्श्य कैवल्यनिर्णयाय दशभिः सूत्रैः क्रमेणोपयोगिनोऽर्थानभिधाय, शास्त्रान्तरेऽप्येतदेव कैवल्यमित्युपपाद्य कैवल्यस्वरूपं निर्णीतमिति व्याकृतः कैवल्यपादः ।

सर्वे यस्य वशाः प्रतापवसतेः पादान्तसेवानति-
प्रभ्रश्यन्मुकुटेषु मूर्द्धसु दधत्याज्ञां धरित्रीभृतः ।
यद्वक्त्राम्बुजमाप्य गर्वमसमं वाग्देवता संश्रिता
स श्रीभोजपतिः फणाधिपतिकृत्सूत्रेषु वृत्तिं व्यधात् ।

इति श्रीधारेश्वरभोजदेवविरचितायां राजमार्त्तण्डाभिधायां
पातञ्जलवृत्तौ कैवल्यपादश्चतुर्थः ।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।

---

* रूपतातिक्रमः (पाठा०) । † व्यवहार योग्यं (पाठा०) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय विद्या प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

पातञ्जल-योगदर्शनम्

तत्त्ववैशारदीसंवलित—व्यासभाष्योपेतम्

संपादक—डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य, व्याकरणाचार्य

एम० ए०, पी-एच० डी०

पातञ्जल योगसूत्र का, सर्वतंत्रस्वतंत्र परमदार्शनिक श्री वाचस्पति मिश्र विरचित **तत्त्ववैशारदी** सहित व्यासभाष्य कई वर्षों से अनुपलब्ध था। डा० भट्टाचार्य ने बड़ी कुशलता से इसका सम्पादन कर इसे प्रस्तुत किया है। इस संस्करण की महती विशेषता यह है कि इसमें विस्तृत भूमिका में (जो कि चार प्रकरणों में विभक्त है) योगशास्त्र और योग-विद्या का प्रायः पूरा इतिहास वर्णित हुआ है और ग्रन्थ के अन्त में अत्यन्त उपयोगी पातञ्जल—योगसूत्र—भाष्यानुक्रमणी दे दी गई है। म० म० पं० गोपीनाथ कविराजजी जैसे दार्शनिक शिरोमणि ने इस भूमिका की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और अपना आशीर्वाद प्रदान किया है। मूलग्रंथ भाष्य और टीका के अतिरिक्त महती भूमिका में निम्नांकित विषयों का सन्निवेश किया गया है:—

प्रथम प्रकरण—सांख्ययोग विद्या, उसका वैशिष्ट्य और प्रवर्तन, इस विद्या में उपलब्ध प्रमाण, प्रमेय निर्धारण दृष्टि, मुख्य और अकृत्रिम दृष्टियां, योग का स्वरूप और कैवल्य, आर्ष और अनार्ष शास्त्रों में योगविद्या का अभ्युपगम, योगप्रतिपादक ग्रन्थों में दूषित मत, मतभेद का रहस्य, विप्रतीप दृष्टियाँ, सांख्ययोग पर आक्षेप और उनके समाधान, इस विद्या के ह्रास का कारण, इससे उत्पन्न अन्य लौकिक विद्याएँ।

द्वितीय प्रकरण—पातञ्जल योगसूत्र और उसकी व्याख्याएँ, योगसूत्रकार, पतंजलि नाम के शास्त्रकार, सामवेद और योगसूत्र, रचनाकाल, सूत्रसंख्याविमर्श, पुराणों में योगसूत्र का प्रसङ्ग, न्याय-व्याकरण शाक्त ग्रन्थ-वेदान्तभाष्य-योगशास्त्र—बौद्ध और जैन ग्रन्थों में, योगसूत्र का प्रसङ्ग, कुछ अनभिज्ञ विद्वान्, योगसूत्र की व्याख्याएँ।

तृतीय प्रकरण—व्यास भाष्य और उसकी व्याख्याएँ, १२ मतों का दिग्दर्शन, योगभाष्य के अन्दर शास्त्रान्तरों के वचन, भाष्यपाठ की समीक्षा, योगभाष्य के व्याख्याकार, तत्त्ववैशारदीकार, वाचस्पति मिश्र, उनका प्रामाण्य और उनकी रचनाएँ, आदि।

चतुर्थ प्रकरण—प्राचीन सांख्ययोगाचार्य, (कपिल आदि १८ आचार्योंका परिचय)

शुद्ध एवं आकर्षक छपाई, पक्की कपड़े की जिल्द डबलडिमाई साइज में लगभग ३०० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १०.००

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri